CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निगमागमिक काल गणना मीमांसा

वैदिक कालचक्र

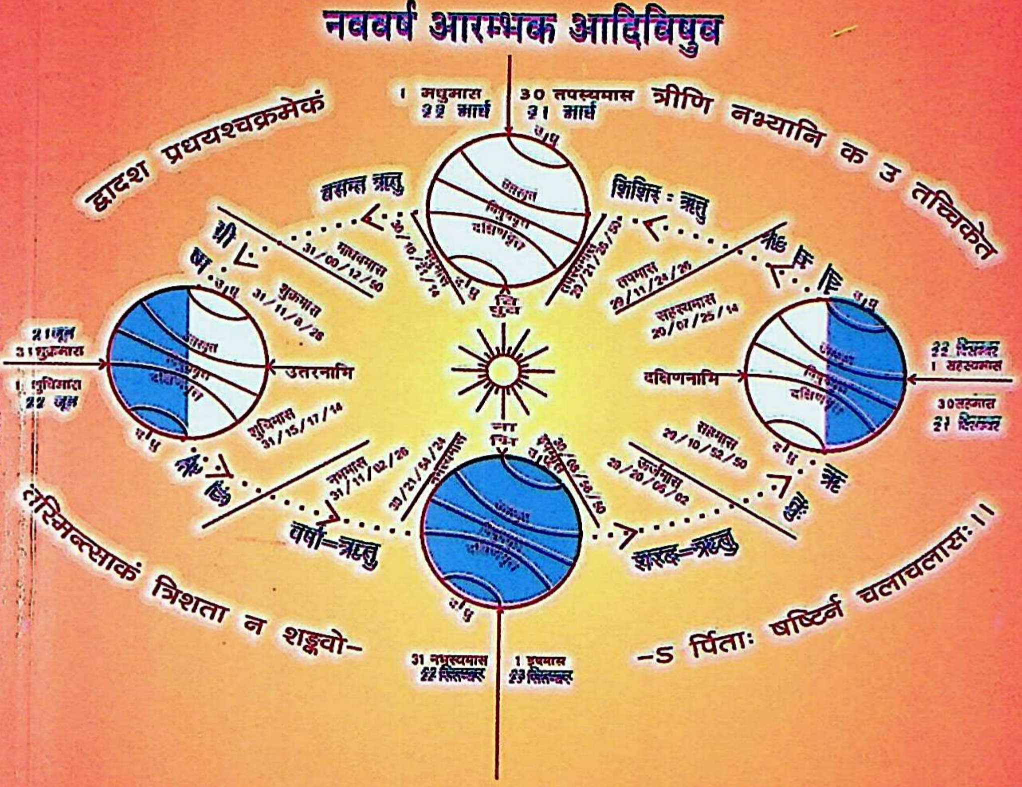

वर्ष मध्यस्थ मध्यविषुव

माससमान - दिन/घंटा/मिनट/सैकेण्ड

पृथ्वी के घूर्णन एवं परिक्रमण में गतिमान काल चक्र

ऋग्वेद 1/164/48, इस मंत्र के द्रष्टा ऋषि दीर्घतमा।

संवत्सरात्मा काल देवता। स्वराड् पंक्ति छन्द। पञ्चम स्वर।

लेखक :
आचार्य भक्तिपुत्र रोहतम

सहायक लेखक :
एकात्म देव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निगमागमिक
काल गणना मीमांसा

आचार्य भक्तिपुत्र रोहतम

PILGRIMS

पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग
वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निगमागमिक काल गणना मीमांसा

आचार्य भक्तिपुत्र रोहतम

प्रकाशक

पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग

बी 27/98, ए-8, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी- 221010

टेलीफोन – 91-542 2314060

e-mail:pilgrimspublishingvns@gmail.com

website-www.pilgrimsonlineshop.com

www.pilgrimspublishingvns.in

प्रथम संस्करण – 2017

© आचार्य भक्तिपुत्र रोहतम, 2017

सर्वाधिकार लेखक के अधीन

सम्पादन — वशिष्ठमुनि ओझा

आवरण — क्रिस्टोफर बर्चेट

लेआउट — सुरेश जायसवाल

ISBN : 978-93-5076-153-3

इस पुस्तक का पुनर्प्रकाशन, किसी भी प्रकार का आंशिक या पूर्ण प्रकाशन, इलेक्ट्रॉनिक प्रयोग, छायाचित्र का उपयोग आदि, विशेषज्ञ की समीक्षा के अलावा, प्रकाशक की अनुमति के बिना कानून का उल्लंघन है।

मुद्रण : भारत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ सं.
पुरोवाक्	७
प्रथम अध्याय काल चक्र	**११-१९**
१. काल दर्शन	११
२. कालचक्र-ज्ञापक मंत्र	१३
३. वैदिक ऋतु और तदनुसार आर्तव मास	१६
४. वेद में स्पष्ट है कि "पृथ्वी के घूर्णन एवं परिक्रमण से दिन-रात और ऋतुएँ होती हैं।'	१७
द्वितीय अध्याय संवत्सर कालात्मा विषुवान्	**२०-३५**
१. द्वादशमास बाँटने का मूल, "विषुव बिन्दु"	२०
२. सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी का महासुपर्ण के रूप में वैदिक रूपक	२४
३. वर्ष का आरम्भ विषुव दिवस से	२९
४. विषुव से मास विभाजन	३०
५. उत्तरावर्त और दक्षिणावर्त	३२
६. नाड़ीवृत्त, विषुववृत्त और कालवृत्त	३३
७. क्रान्तिवृत्त	३४
८. आदि विषुव	३४
९. मध्य विषुव	३४
१०. विषुवनाभि	३५
११. उत्तरनाभि	३५
१२. दक्षिणनाभि	३५
१३. उत्तरायण व दक्षिणायण	३५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषय	पृष्ठ सं.
तृतीय अध्याय षड् ऋतु	**३६-४९**
१. वसंत ऋतु	३६
२. ग्रीष्म ऋतु	३८
३. वर्षा ऋतु	४१
४. शरद ऋतु	४२
५. हेमन्त ऋतु	४५
६. शिशिर ऋतु	४८
चतुर्थ अध्याय वेदों में ऋतुओं का विविध विभाग	**५०-६३**
१. द्वादश ऋतु	५०
२. द्विविध ऋतु	५०
३. त्रिविध ऋतु	५१
४. ऋग्वेदीय पञ्चविध ऋतु	५३
५. ऋग्वेद के काल चक्र ज्ञापक प्रथम मंडल के १६४ वें सूक्त के कुछ अन्य कालचक्र सम्बन्धी महत्वपूर्ण मंत्र	५६
६. वैदिक महोत्सव एवं उनके वर्तमान में प्रचलित कुछ रूप	५८
७. ऋतुसन्धियों और ऋतुओं का प्रभाव	६२
पञ्चम अध्याय चन्द्रमा	**६४-८३**
१. श्रुतियों में चन्द्रमा की उत्पत्ति	६४
२. चन्द्र ग्रहण एवं सूर्य ग्रहण	६६
३. सूर्य के प्रकाश से ही चन्द्रमा का प्रकाश	६८
४. पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य के सम्बन्ध में आधुनिक वैज्ञानिक डार्विन का सिद्धान्त	७०
५. नाक्षत्र चाँद्रमास व्यवस्था	७०
६. अधिकमास और क्षयमास व्यवस्था	७३
७. चन्द्रमा पृथ्वी की और पृथ्वी के साथ-साथ सूर्य की परिक्रमा करता है	७६
८. चन्द्रमा का अपने अक्ष पर घूर्णन व चान्द्रमास	७७
९. चन्द्रकलाएँ और उनसे चान्द्रमास की उत्पत्ति	७७
१०. चक्र या वृत्त को मापने का कोणात्मक परिमाण	७९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषय **पृष्ठ सं.**

११. चन्द्रमा की शुक्लपक्षीय कलायें एवं शुक्ल पक्ष ८०
१२. चन्द्रमा की कृष्णपक्षीय कलायें और कृष्णपक्ष ८१

षष्ठम अध्याय नक्षत्र और ग्रह ८४-८७

१. नक्षत्र ८४
२. ग्रह एवं नक्षत्र की तुलनात्मक समीक्षा ८५
३. आवश्यक नक्षत्र ज्ञान ८७

सप्तम अध्याय वेद में नक्षत्र ८९-९५

१. यजुर्वेद में नक्षत्रों का ज्ञान अथवा भगण विज्ञान ८९
२. अथर्ववेद में नक्षत्रों का वर्णन ९१
३. कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता में नक्षत्र वर्णन ९४
४. वैदिक काल सम्बन्धी ज्योतिषीय वैज्ञानिकी अति महत्त्वपूर्ण तथ्य ९९

अष्टम अध्याय मध्यकालीन ज्योतिष एवं ज्योर्तिविद महापुरुष १००-१०६

१. लगध और वेदांग ज्योतिष १००
२. लगध द्वारा नक्षत्र मंडल का द्वादश विभाग और उनके उत्तराधिकारियों द्वारा उसका राशि नामकरण १०१
३. आर्यभट्ट प्रथम १०४

नवम अध्याय वेद, वर्तमान गवेषणा और मध्यकाल के कुछ तथ्य १०७-११०

१. अयन गति १०७
२. खगति १०७
३. पृथ्वी की तीसरी गति १०८
४. नाक्षत्र सौर संक्रान्ति मास व्यवस्था १०९
५. वेदों में नक्षत्र मंडल का द्वादश मेषादि राशि चक्र मे विभाजन न करने का कारण ११०

दशम अध्याय वैदिक कालगणना की अन्य प्रणालियों के साथ तुलनात्मक समीक्षा और निष्कर्ष १११-१४१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषय	पृष्ठ सं.
१. मेघनाथ साहा भारतीय पञ्चांग निर्माण समिति	१११
२. लोकमान्य गंगाधर तिलक और मेघनाथ साहा भारतीय पंचांग निर्माण समिति	११३
३. प्राकृतिक चन्द्रकलाओं के चान्द्रमासों के सम्बन्ध में मेघनाथ साहा समिति का अविचारित निर्णय	११४
४. साहा समिति के निर्णय के गुणदोष पर तथ्यात्मक विमर्श	११५
५. सुनिर्धारित सम्वत् युगाब्द	११८
६. युग का आरम्भ ग्रहों के तारतम्य से होता है	१२०
७. विविध संवत्सर आरम्भ विषयक मीमांसा	१२०
८. आर्तव वैदिक वर्ष और नाक्षत्र वर्ष में भेद	१२२
९. वैदिक आर्तव वर्ष और चान्द्र वर्ष में भेद	१२३
१०. ईसवीय सन् – संवत् का इतिहास	१२५
११. वैदिक आर्तव मास वर्ष व्यवस्था और रोमीय आंग्ल खिस्ताब्दीय मास वर्ष व्यवस्था की तुलनात्मक समीक्षा	१३०
१२. विमर्श से प्राप्त निष्कर्ष	१३५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुरोवाक्

आध्यात्मिक जीवन का निर्णय कर साधना के क्रम में कण-कण व्यापी परमात्मा भगवान् राम की प्रेरणा से जब मैं संस्कृत भाषा, वेद, रामायण आदि ग्रन्थों के मौलिक तथ्यों को समझने के उद्देश्य से काशी में अध्ययन साधना कर रहा था। संस्कृत साधना के इसी क्रम में दशाश्वमेध स्थित रघुनाथ सिंह के उस समय खाली आवास शान्तिनिकेतन में भगवत् प्रेरणा से उनके आग्रह पर रह रहा था, तो उस समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े बहुत-से लोगों का मेरे पास आना-जाना होता था, क्योंकि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्यालय राममन्दिर गोदौलिया बहुत पास में ही था, सन् १९८१ में एक दिन पंडित श्री मृत्युंजय त्रिपाठी जी भारतीय तिथि पत्र नाम का एक कलेण्डर लेकर आये जिनमें वैदिक महीनों के नाम थे, उनकी तारीखें भी डाली गयी थीं। उस समय मैं ज्योतिष के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता था, वे कुछ विशेषताएँ उस तिथि पत्र के सम्बन्ध में बताने लगे तो मैंने उनसे कहा, कि इसकी विशेषताएँ तो हम तब जाने जब हम ज्योतिष के विषय में कुछ जानते हों, यदि आपको लगता है कि अपने वेदों के अध्ययन के क्रम में मैं इस सम्बन्ध में कुछ विशेष कर सकता हूँ तो कृपा कर जितना ज्योतिष का ज्ञान आपको है उसे हमें सिखाने का कष्ट करें। उस दिन से प्रतिदिन पं. मृत्युंजय त्रिपाठी जी वहीं आकर डेढ़ से दो घंटे का समय निकालकर हमें अपनी सारी ज्योतिष की जानकारियों से अवगत कराते रहें, और लगभग एक महीने में उन्होंने इस प्रकार हमें वर्तमान पारम्परिक ज्योतिष का ज्ञान कराया। वेदों में इस सम्बन्ध में क्या है, इस बात पर वह स्वयं स्पष्ट नहीं थे, क्योंकि वेदों का उन्हें गम्भीर अध्ययन नहीं था। किन्तु उन्हें स्वर्गीय लोकमान्य तिलक के कथन से यह विश्वास था कि यह व्यवस्था वेदों में है, और तिलक के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कथन के आधार पर ही देश के स्वतंत्र होने पर मेघनाथ साहा समिति का गठन किया गया था, जिसने इन वैज्ञानिक दिनांकों को भारतीय दिनांक के रूप में स्वीकार किया।

मैंने बचपन में ही भूगोल का अध्ययन किया था, और इस समय वेदों के अनुशीलन में लगा था, यह विषय बहुत महत्त्वपूर्ण था, साथ ही परमात्मा की प्रेरणा से बहुत-सी रहस्यमयी बातें खुल रही थीं। उसी क्रम में ऋग्वेद में वैदिक कालचक्र ज्ञापक मन्त्र का अध्ययन किया। सारी वैज्ञानिक चीजें उसके साथ बैठ रही थीं, उसी क्रम में ऐतरेय ब्राह्मण का अध्ययन करते हुए पृथ्वी ही घूमती है सूर्य नहीं, यह स्पष्ट विवेचना प्राप्त हो गई। फिर स्वाभाविक रूप से हमारे अनुशीलन में यह वैदिक कालचक्र सम्मिलित हो गया। इसी बीच सन् १९८६ में माननीय रामचन्द्र पाण्डेय जी जो उस समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के काशी विभाग के प्रचारक के रूप में आये थे, से सम्पर्क जुड़ गया। उन्होंने हमसे इस वैदिक कालचक्र को समझा, उनसे मालूम हुआ कि मा. मोरोपन्त पिंगले जी भारतीय मौलिक दिनांकों की गवेषणा में लगे हुए हैं। संयोग से सन् १९८७ में मा. मोरोपन्त पिंगले जी का काशी में प्रवास था, उस समय मैं जवाहर नगर एक्टेंशन में रह रहा था। रामचन्द्र पाण्डेय जी ने हमारे घर पर ही मा. मोरोपन्त पिंगले जी का भोजन इस चर्चा के निमित्त रखा, जिसमें उस समय यहां के प्रान्त प्रचारक मा. ज्योति जी, दो ज्योतिषी मा. नागेन्द्र पाण्डेय और मृत्युंजय त्रिपाठी जी भी इस सम्बन्ध में चर्चा हेतु आमन्त्रित हुए। भोजनोपरान्त मैंने अपने हाथ से बनाया हुआ कालचक्र का एक चित्र रखा और उस पर चर्चा शुरू हुई। मा. मोरोपन्त जी बहुत प्रसन्न हुए और उनको लगा कि जिस तथ्य की वह खोज कर रहे थे वह मिल गया। उन्होंने मुझसे कहा कि महाराज जी यह सम्पूर्ण तथ्य पुस्तक और कलेण्डर के रूप में आप तैयार कर दें तो यह देश अप्राकृतिक-अवैज्ञानिक अंग्रेजी तारीखों व महीनों के जाल से मुक्त हो सकेगा। यह आपकी राष्ट्र के लिए बड़ी सेवा होगी।

सन् २००६ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में वेद विभाग एवं विज्ञान भारती के सहयोग से एक वेद विज्ञान सम्मेलन रखा गया था, उस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्मेलन में मैंने इस विषय को पावर पाइंट के द्वारा प्रदर्शित करते हुए रखा। उस समय जो विज्ञान भारती के वयोवृद्ध प्रमुख थे, उन्होंने अपने पास बुलाया और कहा कि आपके द्वारा प्रस्तुत यह विषय चमत्कृत करने वाला रहा, यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। आप यह करें, इसमें जो भी सहयोग अपेक्षित होगा हम करेंगे। इसके बाद मुझे अंतरिक्ष ज्योतिष ज्ञाता रामसहाय जी का संस्कृत में लिखा ज्योतिष ग्रन्थ "अर्वाचीनं ज्योतिर्विज्ञानम्" पढ़ने को मिला। जिससे आधुनिक अंतरिक्ष वैज्ञानिकों द्वारा की गवेषणा का अच्छा ज्ञान हो सका जिससे मुझे आधुनिक वैज्ञानिकों की गवेषणा और वेदों की घोषणा का तथ्यात्मक स्वरूप स्पष्ट हो सका। इस सम्बन्ध में रामसहाय जी के इस ग्रन्थ का आभारी हूँ।

उक्त अध्ययन के बाद मैंने अपने प्रथम ग्रन्थ "**निगमागमयोस्तत्त्वविमर्शः**" के चतुर्थ अध्याय में इस वैदिक कालचक्र को पहली बार व्यवस्थित और पूर्ण रूप से रखा, यह ग्रन्थ संस्कृत में होने से आधुनिक अंतरिक्ष वैज्ञानिकों को समझने में कठिनाई रही। जब भी इसकी किसी से चर्चा होती थी तो वह इसे हिन्दी में लिखने के लिए कहता था, साथ ही कई लोग यह भी आग्रह कर रहे थे, कि अंतरिक्ष वैज्ञानिकों के ध्यान में लाने के लिए इसका इंगलिश प्रारूप भी आपको तैयार कराना चाहिए। बीच-बीच में रामचन्द्र पाण्डेय जी से जब भी भेंट होती, तो वे पूछते कि वह वैदिक कालचक्र वाला काम कहाँ तक पहुँचा? अन्ततः वह एक दिन अपने साथ सुनील खेमका जी को लेकर मेरे आवास पर पहुँचे और कहा कि ये सुनील खेमका जी आपको एक टाइपिस्ट उपलब्ध कराना चाहते हैं, कृपा करके आप उसे स्वीकार करें और समरसता और कालचक्र वाले विषय पर ग्रन्थ तैयार करवाइये। साथ ही आप जिस तरह से समझाते हैं, ऐसा एक कलेण्डर जिसका नाम आप स्वयं तय कीजिये और जिससे तथ्य स्पष्ट हो जाये ऐसा तैयार करवाइये। उनका यह आग्रह इतना प्रबल था कि मानना ही पड़ा। बाद में यह लगा कि ये प्रभु की प्रेरणा इसी प्रकार इसके तैयार कराने की होगी, नहीं तो इसके पहले भी मैं स्वयं ही टाइपिस्ट रख करके यह कार्य करवा सकता था, किन्तु यह बात आज रामचन्द्र पाण्डेय जी के आने से ही स्पष्ट हुई।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस प्रकार यह निगमामिक कालगणना मीमांसा पुस्तक और प्राकृतिक आर्तव वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय वैदिक कालचक्र तैयार हुआ और आज वेद का यह विज्ञान अंतरिक्ष वैज्ञानिकों, राष्ट्रभक्त विद्वानों एवं भारतीय ज्योतिषियों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ।

भक्तिपुत्र रोहतम

१ मधुमास, युगाब्द ५११९

तदनुसार २२ मार्च २०१७ ई.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रथम अध्याय
काल चक्र

कैसे हो ऋतुओं का ज्ञान? क्या चाँन्द्र महीनों से चलती हैं ऋतुएँ? कभी १५ से २० दिन आगे? कभी १५ से २० दिन पीछे? या फिर अंग्रेजी तारीखें ही हैं वैज्ञानिक? जिनमें जीवन भर पूछो कि यह महीना ३० दिन वाला है, या ३१ दिन वाला? इस वर्ष फरवरी २८ की, या २९ की? ये अंग्रेजी तारीखें वैज्ञानिक हैं या बेतुकी? क्या है प्राकृतिक काल गणना का रूप? क्या है प्राकृतिक काल दर्शन? इन सभी प्रश्नों की मीमांसा कर वास्तविक तथ्य को स्पष्ट करना ही इस ग्रन्थ का प्रयोजन है।

१- काल दर्शन

कलयति, कलयते, कलते वा इतिकालः। 'काल' शब्द की इस प्रकार की व्युत्पत्तियाँ हो सकती है। **कल गतौ संख्याने च**[१], **कल-क्षेपे**[२], **कल आश्वादने**[३] **कल शब्दसंख्यानयोः**[४] इत्यादि अर्थों में पाणिनि द्वारा प्रयुक्त कल धातु से कर्म में घञ् प्रत्यय करने पर काल शब्द बनता है। **कलयति सर्वं इतिकाल़ः**, जिससे सबकुछ कलित होता है, या जो सबको कलित करता है, वह काल है। अर्थात् जिससे सब उत्पन्न हों, जिसमें सब समाप्त हों, जिसके द्वारा सबकी गणना हो, जिससे क्रम की व्यवस्था बने, वह काल है।

सूर्य उदित होता है, ज्योति फैलती है, प्राणियों में चेतनता आती है। प्रात: काल होता है। प्राणी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार कर्मों में संलग्न होते हैं। उन कर्मों को करने में काल व्यतीत होता है। काल में ही कर्म किया

---

१. पा.धा.चुरादि २९०उभयपदी। २. पा.धा.चुरादि ७२ उभयपदी।
३. पा.धा.चुरादि २०४ उभयपदी। ४. पा.धा.भ्वादि ३३४ आत्मनेपदी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाता है। काल के द्वारा ही, कर्म और काल को गिना जाता है, धीरे-धीरे काल जाता है–व्यतीत होता है, उसी प्रकार धीरे-धीरे नया काल आता रहता है। प्रातःकाल, दिन काल, सायं काल, रात्रि काल। जिस क्षण, जिस काल में हूँ, वह क्षण जा रहा है, उसके साथ संलग्न ही नया क्षण आ रहा है, वर्तमान काल भूतकाल में बदल रहा है, भविष्य काल वर्तमान काल हो रहा है। इस प्रकार यह काल ही सबका कलन करता है—परिगणन करता है। यह काल ही सबका कवलन करता है। काल क्रम से परिवर्तित हो रही यह चिरकालीन प्रकृति नित्य नवीन होती हुई गतिमान है, इसलिए यह चिरनवीना है। इस परिवर्त्यमान प्रकृति में सब कुछ कलन करता हुआ काल दिखाई देता है। यह काल और इस काल का क्रम जैसा वेदों ने देखा, जैसा वैदिक ऋषियों ने देखा उसकी मीमांसा करते हैं।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशे विशे।।[1]

अन्वय- इह धातृभिः वनेषु विभ्वं चित्रं प्रथमः धायि यम् अप्नवानः भृगवः विशे विशे विरुरुचुः, अध्वरेषु ईड्यः होता।

इह- यहाँ इस संसार में **धातृभिः-** ज्ञान धारण करने में समर्थ लोगों ने **वनेषु-** बनों में, जंगलों में नाना आकारों में, फैले हुए, दिखाई पड़ रहे इस लोक में **विभ्वं-** चैतन्य विद्या से व्याप्त चित्रं– अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक गुणों वाले अद्भुत विज्ञान को **प्रथमः धायि-** सर्वप्रथम धारण किया, **यम्-** जिस विज्ञान को **अप्नवानः-** अपना बनाते हुए- आत्मसात करते हुए, उसे जीवन व्यवहार में उतारते हुए, और उस ज्ञान की शिक्षा के द्वारा अपनी विद्या संतानों को उत्पन्न करते हुए, **भृगवः** – विद्या के द्वारा अविद्या को भूज डालने वाले अर्थात् जला डालने वाले परिपक्व विज्ञान से सम्पन्न ऋषियों ने **विशे-विशे-** जन-जन के लिए **विरुरुचुः** – उस विज्ञान को प्रकाशित किया। अतः वे ज्ञानदाता ऋषिगण **अध्वरेषु-** हिंसा रहित सत्कर्मों में **ईड्यः** - हमारे पूज्य **होता-** सत्कर्म के उपदेष्टा एवं कर्ता हैं।

मीमांसा– वह इस प्रकार, निश्चित समय में अहोरात्र से आरम्भ कर, ऋतु, मास वर्षात्मक प्रकृति में गतिमान परिवर्तन, उसी क्रम से उसमें उत्पन्न

---

१ ऋग्वेद ४/७/१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हो रही वस्तुओं में, जीवों में ऋतुओं का प्राकृतिक प्रभाव। प्रत्येक क्रिया में गतिमान काल की अवधि, क्रम से प्रत्येक दिन-रात में परिवर्तित हो रहा तापक्रम। उसी प्रकार क्रमशः रात्रि और दिन में पारस्परिक गम्यमान न्यूनाधिक्य, उसी क्रम में ही प्राप्त समान कालावधि से युक्त अहोरात्र। सूर्य और चन्द्रमा का पूर्व दिशा में उदय, पूर्व से पश्चिम जाते हुए पश्चिम दिशा में अस्त होना। सभी तारों का पूर्व से पश्चिम गमन। उत्तर दिशा में ध्रुव तारा की अपरिवर्तित स्थिति, उस तारा के समीप में स्थित तारों का **ध्रुव** का ही परिक्रमण। और पुनः सभी तारों का उसी ध्रुवतारे की परिक्रमा में पूर्व से पश्चिम दिशा में परिक्रमण स्थिति। आकाश में निश्चित वृत्तीय मार्ग में निश्चित नक्षत्रों की पूर्व से पश्चिम गतिमान स्थिति। उन नक्षत्रों का निश्चित काल के अन्तराल में निश्चित स्थल में दिखना। उनमें आपस में समीप स्थित नक्षत्रों में निश्चित आकारात्मिका स्थिति। तीव्र गति से चलती हुई नौका में स्थित व्यक्ति को नदी के दोनों किनारे और उन किनारों में स्थित वृक्षों का नौका की विपरीत दिशा में चल रहे होने का भ्रम। इन सारी चीजों को देखते हुए ऋषि के निर्मल अन्तःकरण में, उसकी ऋतम्भरा प्रज्ञा में, काल चक्र ज्ञापक मंत्र का अवतरण हुआ। जिन मंत्रों का अनुशीलन कर हम यह कह सकते हैं, कि वेदों में काल गणना एवं ऋतु विज्ञान का अत्यन्त व्यवस्थित प्राकृतिक विश्व का श्रेष्ठतम स्वरूप विद्यमान है, जिसको भलीभाँति समझकर आज मैं विश्व के समस्त बुद्धिजीवियों, वैज्ञानिकों को उसे समझने, मनन करने और विश्व को उसका लाभ दिलाने के अनुरोधपूर्वक प्रस्तुत कर रहा हूँ।

२- कालचक्र-ज्ञापक मंत्र

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।।[१]

अस्य मन्त्रस्य दीर्घतमा ऋषिः। संवत्सरात्मा कालः देवता। स्वराट् पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः।

अन्वय–चला, एकम्, चक्रम्, (भावयति।) तस्मिन् चक्रे त्रीणि नभ्यानि सन्ति। द्वादश प्रधयः सन्ति। तस्मिन् साकं, त्रिशता, षष्टिः न (चार्थे नः)

१. ऋग्वेद १/१६४/४८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शङ्कवः, न (इवार्थे न) अर्पिता सन्ति तस्मिन् चक्रे कालाः चलासः सन्ति। क, उ, तत्, चिकेत।

मंत्रार्थ- अपनी धुरी पर और सूर्य की परिक्रमा में चलती हुई यह चला पृथ्वी एक चक्र बनाती है। उस चक्र में तीन नाभियाँ हैं, द्वादश प्रधियाँ हैं, समान दूरी पर तीन सौ साठ कील के समान विभाग हैं। कौन प्रसिद्ध विद्वान् उस चक्र को जानता है?

मीमांसा-चलती हुई इस पृथ्वी का नाम वेद में 'चला' है[१]। इसकी चाल दो प्रकार की है। पहली, यह अपनी धुरी पर घूम रही है, दूसरी साथ-साथ ही यह सूर्य की परिक्रमा भी कर रही है। यह अपनी धुरी पर २३अंश २८ कला झुकी हुई भी है। मंत्र कह रहा है कि इस प्रकार यह चला-पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करते हुए एक चक्र बनाती है। उस चक्र में समान कोण की दूरी पर ३६० कीलें हैं। कोई भी चक्र या वृत्त ३६० अंश का ही होता है। इस चक्र में १२ प्रधियाँ अर्थात् परिधि स्थानीय स्तम्भ हैं। ३६०/१२ बराबर ३०-३० अंश की दूरी द्वादश मासरूप द्वादश स्तम्भ है। चूँकि पृथ्वी अपनी धुरी पर २३ अंश २८ कला झुकी हुई ही यह परिक्रमा कर रही है, इसलिए पृथ्वी पर पड़ने वाली सूर्य की सीधी किरणों के दृष्टिगत इस चक्र की तीन नाभियाँ हैं। पहली नाभि जब सूर्य की किरणें पृथ्वी की दैनिक चाल के दृष्टिगत, सूर्य की परिक्रमा कर रही पृथ्वी के उस बिन्दु पर पहुँचने पर जहाँ पहुँचने से सूर्य की किरणें पृथ्वी के विषुव अर्थात् मध्य भाग पर सीधी पड़ती हैं, इस चक्र की **विषुव नाभि** है।

पृथ्वी की दैनिक गति के कारण सूर्य की सीधी किरणों के दृष्टिगत पृथ्वी के मध्य का जो वृत्तात्मक भाग एक बार सीधी किरणों के सामने से घूम जाता है, उसे कहते हैं **विषुववृत्त**। घूमते हुए इस वृत्त की **विषुवत् रेखा** अर्थात् **भूमध्य रेखा** पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ने के कारण इस दिन सम्पूर्ण पृथ्वी पर रात दिन बराबर होता है। छः-छः महीने के अन्तराल से यह दिन वर्ष में दो बार आता है। पहला जिसके बाद इस विषुव वृत्त के उत्तरी गोलार्ध में रात की अपेक्षा दिन बढ़ने लगता है। और दक्षिणी गोलार्ध में ठीक इसके विपरीत घटने लगता है। इस विषुव दिन से वैदिक वर्ष का आरंभ होने से यह हुआ **आदि विषुव**।

---

१. ऋग्वेद ४/७/१ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसके छः माह बाद पुनः सारी पृथ्वी पर रात दिन बराबर हो जाते हैं। इसके काल चक्रात्मक वर्ष के मध्य में आने से इसे कहते हैं **मध्य विषुव।** इसके साथ ही दक्षिणी गोलार्ध में रात्रि की अपेक्षा दिन का बढ़ना और इसके उलट रात्रि का घटना तथा उत्तरी गोलार्ध में दिन का घटना व रात्रि का बढ़ना शुरू हो जाता है। इस प्रकार मंत्र में कही हुई यह हुई **पहली नाभि,** जो वर्ष के आरंभ में और वर्ष के मध्य में आती है। इसे कहते हैं **विषुवनाभि।**

पृथ्वी, आदिविषुव बिंदु से अपने चक्रात्मक परिक्रमा-पथ पर ९० अंश की दूरी, ३०-३० अंश की मासिक दूरी के अनुसार तीन माह में चलकर उत्तरी गोलार्ध में दिन बढ़ने और रात्रि घटने के शीर्ष दिवस पर पहुँचती है, तो इस दिन सूर्य की किरणें अपनी धुरी पर घूमती हुई पृथ्वी के जिस वृत्तात्मक फलक पर सीधी पड़ती हैं। उसे **उत्तरवृत्त** कहते हैं। चलती हुई पृथ्वी के चक्रात्मक परिक्रमा-पथ के जिस स्थलपर पृथ्वी के पहुँचने पर यह अहोरात्र घटित होता है, वह स्थल बिंदु इस वेद मंत्र में कहे कालचक्र की **दूसरी नाभि** है। इसे कहते हैं **उत्तरनाभि।**

इस उत्तर नाभि से अपने परिक्रमा पथ पर चलती हुई चला-पृथ्वी ९० अंश पर पड़ने वाले मध्य विषुव से होती हुई १८० अंश चलकर उस स्थल पर पहुँचती है, जहाँ घूमती हुई पृथ्वी के दक्षिणी गोलार्ध का वह भाग सूर्य की सीधी किरणों के सामने से घूमता है, जो इस दक्षिणी गोलार्ध में सबसे बड़ा दिन और सबसे छोटी रात बनाता है। इस अहोरात्र में सूर्य की सीधी किरणों के सामने से घूमने वाले, इस वृत्तात्मक कल्पित फलक को **दक्षिण वृत्त** कहते हैं। और चक्रात्मक परिक्रमा-मार्ग के जिस कल्पित बिन्दु पर पहुँचने से यह अहोरात्र घटित होता है, वह बिन्दु है, इस वेद मंत्र की **तीसरी नाभि।** इसे कहते हैं **दक्षिणनाभि।** इस प्रकार ये तीन नाभियाँ है, इस काल चक्र की। क्रमशः **विषुवनाभि, उत्तरनाभि और दक्षिणनाभि।**

वेदों में ही बताये १२ महीने ही १२ प्रधियाँ हैं इस काल चक्र की। विषुव से ३०-३० अंश की दूरी चलने में चला अर्थात् पृथ्वी द्वारा लगाया गया काल ही होता है, एक माह का काल। जैसा कि निरुक्त में इस मंत्र की व्याख्या करते हुए यास्क ने लिखा है—

"द्वादश प्रधयश्चक्रमेकमिति मासानां मासा मानात्।[१]"

---

१. निरुक्त ४/२७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एक चक्र की १२ प्रधियों से मंत्र में महीनों का मान दिया गया है।

विनता चला पृथ्वी की घूर्णन एवं परिक्रमण रूपी द्विविध चाल से बन रहे इस चक्र में अचल काल के सभी अवयव, होरा, विहोरा, प्रहोरा अर्थात् घंटा, मिनट, सेकंड और घटी, पल, विपल, दिन-रात्रि, अहोरात्र, मास, ऋतु, वर्ष चल रहे हैं। मंत्र कहता है कि **''क उ तच्चिकेत''**- कौन प्रसिद्ध विद्वान उस काल-चक्र को जानता है? क्योंकि बिना उसे जाने काल कलना को जाना ही नहीं जा सकता।

वेदों में मंत्र के साथ ही द्रष्टा ऋषि का नाम, मंत्र का देवता, छंद और स्वर लिखा हुआ है। इस मंत्र के द्रष्टा ऋषि का नाम **दीर्घतमा है। संवत्सर आत्मा काल** ही देवता है। स्वराट् पंक्ति छन्द है। पञ्चम स्वर है। वेद मंत्रों का गंभीरतापूर्वक मनन करने के बाद मैंने पाया कि ऋषियों द्वारा देखें मुख्य सत्य के अनुसार ही ऋषि का नाम हो गया है। यहाँ भी सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी का मार्ग भी गोलवृत्ताकार न होकर दीर्घवृत्ताकार है। सूर्य-परिक्रमा का यह पथ अतिविशाल होने के साथ पृथ्वी के सम्पूर्ण प्राणियों के जीवन से अतिशयता से जुड़ा है। अतिशयता में **'तमप्'** प्रत्यय होता है। इसलिए दीर्घतम इस चक्र के द्रष्टा ऋषि का नाम दीर्घतमा हो गया। मंत्र में जिस सत्य का वर्णन होता है, वही सत्य उस मंत्र का देवता होता है।

३- वैदिक ऋतु और तदनुसार आर्तव मास

ऋतु- पुनः पुनः ऋच्छति आगच्छतीति ऋतुः। जो बार बार आये और जाये उसे ऋतु कहते हैं। ऋगतौ धातु से **'आर्तेश्च तुः**[1]**'** से तुः प्रत्यय होता है और वह कित् होता है। कित् होने से **आद्यन्तौ टकितौ** इस अष्टाध्यायी सूत्र से ऋ धातु के अन्त में तुः करने से ऋतु शब्द बनता है।

ऋतुर्वर्षादिषट्सु च आर्तवेमासि च पुमान्।।[2]

आर्तव- ऋतोर्भवः आर्तवः जो ऋतु से उत्पन्न हो उसे आर्तव कहते हैं। **ऋतोरण्**[3] इस सूत्र से प्रथमा समर्थ ऋतु प्रातिपदिक से 'अस्य' इस षष्ठी अर्थ में अण् प्रत्यय करने से आदि वृद्धि होकर आर्तव शब्द बनता है।

वेद में उक्त वैदिक काल चक्र के अनुसार छः ऋतुएं और ऋतु

---

१. उड़ादि सूत्र १/७४। २. मेदिनीकोश। ३. पा.अ. ५/१/१०५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुसारी अर्थात् आर्तव १२ महीनों के नाम इस प्रकार हैं—

वसंत ऋतु	—	मधुमास,	माधवमास
ग्रीष्म ऋतु	—	शुक्रमास,	शुचिमास
वर्षा ऋतु	—	नभमासस, .	नभस्यमास
शरद ऋतु	—	इषमास,	ऊर्जमास
हेमंत ऋतु	—	सहमास,	सहस्यमास
शिशिर ऋतु	—	तपमास,	तपस्यमास

ध्यान रहे ये महीने चैत्र, वैशाख आदि नाक्षत्र चाँद्र महीने नहीं हैं। वैदिक कालचक्र से अनभिज्ञ लोग इन्हें चाँद्र महीनों का पर्यायवाची समझते हैं, जो पूरी तरह गलत है। बहुत से भारतवासी भी ऐसा समझते हैं कि आर्यभट्ट ने ही दुनिया को सबसे पहले यह बताया कि पृथ्वी घूमती है, सूर्य नहीं। किन्तु आर्यभट्ट स्वयं अपनी पुस्तक के मंगल श्लोक में कहते हैं कि, मैंने वेद रूपी रत्नसागर में डुबकी लगाई, वहाँ से अपनी सामर्थ्य के अनुरूप कुछ रत्न ला पाया। उन्हें ही आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ।

४- वेद में स्पष्ट है कि "पृथ्वी के घूर्णन एवं परिक्रमण से दिन-रात और ऋतुएँ होती हैं।"

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।।[1]

इस मंत्र की हिन्दी व्याख्या मैंने ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मणानुसार की है। लोगों के मन में किसी प्रकार का कोई संदेह न रहे एतदर्थ वह मूल ब्राह्मण, उसका संधि-विच्छेद किया हुआ स्वरूप, और हिंदी अनुवाद भी दे रहा हूँ।

स वा एष न कदाचनास्तमेति नोदेति। तं यदस्तमेतीति मन्यन्तेऽह्न एव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते। रात्रीमेवावस्तात् कुरुतेऽहः परस्तात्। अथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यतेऽहरेवावस्तात् कुरुते रात्रिं परस्तात्। स वा एष न कदाचन निम्नोचति। एतस्य ह सायुज्यं सरूपतां स लोकतामश्नुते य एवं वेद, य एवं वेद।[2]

१. ऋग्वेद १/१६४/४८ २. ऐतरेय ब्राह्मण १४/६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"संधि-विच्छेदपूर्वक श्रुति"

स वा एष न कदाचन-अस्तम् – एति न उद्-एति। तं यद्-अस्तम् –एति –इति मन्यन्ते-अह्न एव तद् – अन्तम् – इत्वा अथ आत्मानम् विपर्यस्यते। रात्रीम् एव अवस्तात् कुरुते अहः परस्तात् ।

अथ यद् एनं प्रातः उद्-एति – इति मन्यन्ते रात्रेः एव तद् अन्तम् इत्वा अथ आत्मानम् विपर्यस्यते अहः एव अवस्तात् कुरुते रात्रिम् परस्तात् । स वा एष न कदाचन निम्नोचति। न ह वै कदाचन निम्नोचति। एतस्य ह सायुज्यं सरूपतां सलोकताम् अश्नुते य एवं वेद ।

हिंदी अनुवाद- वह यह सूर्य कभी अस्त नहीं होता, न उदित होता है। उस सूर्य को जो अस्त हुआ मानते हैं, वे घूमती हुई पृथ्वी के साथ घूमते हुए दिनकर सूर्य के सामने से विपरीत जाकर रात्रि को सामने कर लेते हैं, और दिनकर सूर्य एवं दिन को पीछे। उसके बाद जो इसे प्रातः उदय हुआ कहते हैं, वे रात्रि को ही पृथ्वी के साथ घूमते हुए रात्रि का अंतकर, रात्रि के विपरीत मुख होकर, दिन व दिनकर सूर्य के साथ दिन को सम्मुख कर रात्रि को पीछे करते हैं। वह यह सूर्य कभी नीचे नहीं जाता। वह कभी भी नीचे नहीं जाता। सूर्य ज्ञान से जुड़कर तेजस्वी व बुद्धिमान होता है। जो ऐसा जानता है।

यही तथ्य इसी रूप में अथर्व वेदीय गोपथ ब्राह्मण में भी वर्णित है। किञ्चिद् भाषान्तर भाषा वैज्ञानिकों की दृष्टि में दोनों वेदों और उनके ब्राह्मणों में लम्बे समय के अन्तराल का द्योतक है। वहाँ इस प्रकार है—

स वा एष न कदाचनास्तमयति नोदयति। तद्यदेनं पश्चादस्तमयतीति मन्यन्ते, अह्न एव तदन्तं गत्वाथात्मानं विपर्यस्यतेऽहरेवाधस्तात् कृणुते रात्रीं परस्तात् । स वा एष न कदाचनास्तमयति नोदयति।

तद्यदेनं पुरस्तादुदयतीति मन्यन्ते, रात्रेरेव तदन्तं गत्वाथात्मानं विपर्यस्यते, रात्रिमेवाधस्तात् कृणुतेऽहः परस्तात् । स वा एष न कदाचनास्तमयति नोदयति, न ह वै कदाचन निम्लोचति। एतस्य ह सायुज्यं सलोकतामश्नुते, य एवं वेद।[१]

सन्धिविच्छेदपूर्वक श्रुति।

१. गोपथ उत्तर भाग ४/१०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स वा एष न कदाचन अस्तम् अयति न उदयति। तद् यद् एनं पश्चाद् अस्तम् अयति इति मन्यन्ते, अह्न एव तदन्तं गत्वा अथ आत्मानं विपर्यस्यते अहर् एव अधस्तात् कृणुते रात्रिं परस्तात्। स वा एष न कदाचन अस्तम् अयति न उदयति।

तद् यद् एनं पुरस्तात् उदयति इति मन्यन्ते, रात्रेर् एव तदन्तं गत्वा अथ आत्मानं विपर्यस्यते रात्रिम् एव अधस्तात् कृणुते अहः परस्तात् । स वा एष न कदाचन अस्तम् अयति न उदयति, न ह वै कदाचन निम्लोचति। एतस्य ह सायुज्यं सलोकताम् अश्नुते। य एवं वेद।

हिन्दी- वह यह सूर्य न कभी अस्त होता है, न उदित होता है। वे जो इसको बाद में अस्त होने को जाता है, ऐसा मानते हैं, वे पृथ्वी के साथ घूमते हुए सूर्य के सामने से पीछे की ओर जाकर अपने को विपरीत कर लेते हैं। इस प्रकार दिन को नीचे करते हैं और रात्रि को सामने कर लेते हैं। वह यह सूर्य न कभी अस्त होता है, न कभी उदित होता है।

वह जो इस सूर्य को सामने से उदित होता हुआ मानते हैं, वे पृथ्वी के साथ घूमते हुए रात्रि को घूमकर अपने को विपरीत दिशा में करते हुए रात्रि को नीचे अर्थात् पीछे कर लेते हैं। और दिन को सामने कर लेते हैं। वह यह सूर्य न कभी अस्त होता है, न उदित होता है। निश्चय ही यह कभी भी नीचे नहीं जाता है। जो इस रहस्य को जानता है, वह सूर्य के ज्ञान से युक्त होकर तेजस्वी व बुद्धिमान होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीय अध्याय

संवत्सर कालात्मा विषुवान्

१-द्वादशमास बाँटने का मूल, "विषुव बिन्दु"

बुद्धिमान लोगों में यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि इस ऋषि दीर्घतमा द्वारा दृष्ट सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी द्वारा निर्मित इस दीर्घ वृत्ताकार कालचक्र के ३६० अंशों के ३०-३० अंश के बारह मासात्मक बारह विभाग इस चक्र के किस बिन्दु से करेंगे। श्रुति स्वयं इस तथ्य को स्पष्ट करती है।

तदाहुर्य्यद् द्वादशमासाः संवत्सरस्य। अथैतदहरत्येति यत् वैषुवतम्। अवरेषामेता३त् परेषा३मिति। अवरेषाञ्चैव परेषाञ्चेति ह ब्रूयात्। आत्मा वै संवत्सरस्य विषुवान् अङ्गानि मासाः। यत्र वा आत्मा तदङ्गानि। यत्रो अङ्गानि तदात्मा। न व आत्मा अङ्गानि अतिरिच्यते। न आत्मानम् अङ्गानि अतिरिच्यन्ते। एवमुहैतद् अवरेषाञ्चैव परेषाञ्च भवति।[१]

हिंदी शब्दार्थ- तद्- उस संवत्सर कालचक्र को **आहुः-** कहते हैं। **यद्-** जो **संवत्सरस्य-** संवत्सर के **द्वादश्समासाः-** बारह महीने हैं। **अथ-** उनके विभाजन में मंगलमय **एतद्-** यह **विषुवान् अहः-** रात और दिन के समान विभाग वाला विषुव दिवस, सम्पूर्ण पृथ्वी पर अपनी इस समान मानता के कारण **अति एति-** अन्य सबका अतिक्रमण कर जाता है। अर्थात् अत्यंत श्रेष्ठ है।

अवरेषाम्- न वरः अवरः तेषाम्

समय की दृष्टि से पृथ्वी के एक गोलार्ध में रात्रि की अपेक्षा छोटा दिन काल, दूसरे गोलार्ध में इसका ठीक उलट दिन की अपेक्षा छोटा रात्रि काल,

---

१. शतपथ १२/२/३/६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परेषाम् एक गोलार्ध में छोटे दिन के पर आने वाला बड़ा रात्रि काल, तो उसके पर गोलार्ध में रात्रि के बाद आने वाला बड़ा दिन काल।

एता३त् -एति गच्छति मिलति च यः स एतः, तस्मात् इति– जो एक से जाए और दूसरे में मिले वह एत है। अपनी धुरी पर २३ अंश २८ कला झुकी हुई, नाचती हुई और साथ ही अपने परिक्रमा-पथ पर आगे बढ़ती हुई पृथ्वी की उभय गति में गतिमान यह काल उत्तरी गोलार्ध में बड़ी रात्रियों से छोटे दिनों में जाता हुआ, दिनों को बढ़ाता हुआ, इसके उलट दक्षिणी गोलार्ध में बड़े दिनों से छोटी रात्रियों में जाता हुआ, रात्रियों को बढ़ाता हुआ, यहाँ एत है। पृथ्वी की इस दैनिक एवं वार्षिक गति में एक तरफ रात्रि से दिन में तो दूसरी तरफ दिन से रात्रि में प्रत्येक अहोरात्र में एक दूसरे में समान मान में गतिमान काल की निरन्तरता को दर्शाने के लिए श्रुति ने यहाँ **''एता३त्''** ऐसा प्लुत पाठ किया है। अर्थात् इस प्रकार यह काल एक तरफ उत्तरी गोलार्ध में बड़ी रात्रियों से छोटे दिनों में और दूसरी तरफ दक्षिणी गोलार्ध में उसी के साथ उतना ही बड़े दिनों से छोटी रात्रियों में जाता हुआ इस रात्रि दिन की कालात्मक समानता वाले इस विशिष्ट अहोरात्र विषुव दिवस को प्राप्त करता है। इस प्रकार इस विशिष्ट अहोरात्र वाला यह विषुव दिवस अन्य सभी दिनों का श्रेष्ठता में अतिक्रमण कर जाता है।

श्रुति कह रही है कि दिन-रात्रि की समता वाले इस विशिष्ट अहोरात्र **विषुवान्** के साथ प्रकृति में एक और क्रान्ति घटित होती है। सन्धि खोलकर श्रुति वाक्य **अवरेषाम् च एव परेषाम् च इति ह ब्रूयात्** पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में इस दिवस के पूर्व दिवस तक जो दिनकाल रात्रिकाल की अपेक्षा कुछ छोटा था, और उसके उलट दक्षिणी गोलार्ध में जो रात्रिकाल दिनकाल की अपेक्षा कुछ छोटा था, क्रमशः बढ़ता हुआ इस विशिष्ट सम अहोरात्रं विषुव दिवस को प्राप्त कर इसके बाद के दिवसों में अपने सहचर रात्रि या दिन की अपेक्षा क्रमशः बड़ा ही होने लगता है। निश्चय ही ऐसा ही बोलना चाहिए।

इस प्रकार **आत्मा वै संवत्सरस्य विषुवान् अङ्गानि मासाः** निश्चय ही विषुवान् अर्थात् विषुव दिवस संवत्सर रूप शरीर की आत्मा है। इसी विषुव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से ३०-३० अंश की दूरी तक की पृथ्वी की गति से नापे जाने वाले महीने इस संवत्सर रूप शरीर के अंग हैं। संवत्सर रूप शरीर की आत्मा विषुव दिवस अर्थात् विषुवान् और उसके अंग महीने हैं।

यत्र वा आत्मा तदङ्गानि यत्रो अङ्गानि तदात्मा।

जहाँ आत्मा रहता है, वहीं उसके अंग रहते हैं। जहाँ अंग रहते हैं, वहीं आत्मा रहता है।

न वा आत्मा अङ्गानि अतिरिच्यते न आत्मानम् अङ्गानि अतिरिच्यन्ते।

न तो आत्मा अंगों को छोड़ सकता है, और न ही अंग आत्मा को छोड़कर रह सकते हैं।

एवमुहैतद् – एवम् उ ह एतद् ।

श्रुति उद्घोष कर रही है कि इस प्रकार यह ऐसा ही प्रसिद्ध है। दुनिया जानती है कि आत्मा से रहित अंग मर जाता है, मुर्दा हो जाता है। अर्थात् जो भी वर्ष संवत्सर, सम अहोरात्र कालात्मक इस विशिष्ट विषुव दिवस से प्रारम्भ नहीं होते, परिगणित नहीं होते, वे मृत हैं, वे मुर्दा हैं। उनका धरती की इस जीवंत आर्तव ऋतुगामी प्रकृति से कुछ लेना-देना नहीं।

अवरेषाञ्चैव परेषाञ्च भवति।

यहीं से धरती के एक गोलार्ध में वसंत ऋतु का आगमन होता है, तो विपरीत गोलार्ध में शरद ऋतु का। इसलिए एक गोलार्ध में जब यह वासंतिक विषुव के रूप में आता है तो विपरीत गोलार्ध में ठीक यही दिन शारदीय विषुव के रूप में।

उपर्युक्त शतपथ श्रुति थोड़े ही शब्दान्तरों से गोपथ में भी है। वह इस प्रकार—

तदाहुर्यद् द्वादशमासाः संवत्सरः। अथ हैतदहरवाप्नुयामेति यद्वैषुवतम्। अपरेषां स्विदितमह्नां परेषामिति। अपरेषाञ्चैव परेषाञ्चेति ब्रूयात्। आत्मा वै संवत्सरस्य विषुवानङ्गानि मासाः। यत्र वा आत्मा तदङ्गानि यत्राङ्गानि तदात्मा। न वा आत्माङ्गान्यतिरिच्यते नोङ्गान्यात्मानमतिरिच्यन्त इति। एवमुहैव तदपरेषां स्विदितमह्नां परेषामित्यपरेषाञ्चैव परेषाञ्चेति ब्रूयात्स वा एष संवत्सरः।[१]

१. गोपथ पूर्वार्ध ४/१९।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह श्रुति कुछ सरल शब्दों से तथ्यों को समझाने का प्रयास कर रही है।

हिन्दी शब्दार्थ– तद्- उस संवत्सर कालचक्र को **आहुः-** कहते हैं। **यद्-** जो **द्वादशामासाः संवत्सरः** - बारह महीने वाला संवत्सर है। **अथ-** उनके विभाजन में मंगलमय **एति-** पृथ्वी की उभय गति के साथ चलते हुए **ह एतद्-** निश्चय ही यह **यद् वैषुवतम् अहः** - जो रात और दिन के समान विभाग वाला विषुव दिवस है उसको **अवाप्नुयाम-** हम प्राप्त करें।

अपरेषाम् स्विदितम् अह्नाम् परेषाम् इति

पृथ्वी की उभय गति से रात्रि और दिन के क्रमिक घटने और बढ़ने को स्पष्ट करती हुई श्रुति कह रही है, कि रात्रि या दिन में से जो काल एक में से स्विदित होता है— अर्थात् चू जाता है वही काल ठीक उसके बाद आने वाले, उससे लगे हुए दिन या रात्रिकाल में जुड़ जाता है। स्वेद पसीने को कहते हैं, जैसे पसीने की बूंदे चू जाती हैं, वैसे ही यहाँ जो काल किसी रात्रि या दिन से च्युत होता है, वह अपने ठीक बाद में आने वाले दिन या रात्रि में जुड़ जाता है।

अपरेषाञ् च एव परेषाञ् च इति ह ब्रूयात् ।

अपनी धुरी पर २३अंश २८कला झुकी हुई, और साथ ही अपने परिक्रमा-पथ पर आगे बढ़ती हुई पृथ्वी की उभय गति में गतिमान यह काल उत्तरी गोलार्ध में दिनों के बढ़ने के क्रम में, रात्रि से स्विदित काल च्युतकाल दिन में जुड़ता हुआ, दिनों को क्रमशः बढ़ाता है। इसके उलट दक्षिणी गोलार्ध में दिन से स्विदित काल-च्युत काल रात्रि में जुड़ता हुआ रात्रियों को क्रमशः बढ़ाता है। पृथ्वी की इस दैनिक एवं वार्षिक गति में एक तरफ बड़ी रात्रि से छोटे दिन में, तो दूसरी तरफ बड़े दिन से छोटी रात्रि में, प्रत्येक अहोरात्र में एक से दूसरे में समान मान में गतिमान काल सम्पूर्ण पृथ्वी पर समान मानात्मक विषुव दिवस को प्राप्त होता है।

पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में इस दिवस के पूर्व दिवस तक, जो दिन काल रात्रि की अपेक्षा कुछ छोटा था, और उसके उलट दक्षिणी गोलार्ध में जो रात्रिकाल दिनकाल की अपेक्षा कुछ छोटा था, क्रमशः बढ़ता हुआ, इस विशिष्ट सम अहोरात्र विषुव दिवस को प्राप्त कर, इसके बाद के दिवसों में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपने सहचर रात्रि या दिन की अपेक्षा क्रमशः बड़ा ही होने लगता है। निश्चय ही ऐसा ही बोलना चाहिए।

इस प्रकार सम अहोरात्र कालात्मक **"आत्मा वै संवत्सरस्य विषुवान्, अङ्गानि मासाः"** विषुवान्, निश्चय ही संवत्सर शरीर का आत्मा है। यहीं से ३०-३० अंश की दूरी तक पृथ्वी की गति से नापे जाने वाले महीने इस संवत्सर रूप शरीर के अंग हैं। संवत्सर रूप शरीर का आत्मा **'विषुव दिवस विषुवान्'** और उसके अंग महीने हैं।

"यत्र वा आत्मा तदङ्गानि यत्राङ्गानि तदात्मा।"

जहाँ आत्मा रहता है, वहीं उसके अंग रहते हैं। जहाँ अंग रहते हैं, वहीं आत्मा रहता है।

"न वा आत्मा अङ्गानि अतिरिच्यते। न आत्मानम् अङ्गानि अतिरिच्यन्ते।"

न तो आत्मा अंगों को छोड़ कर रह सकता है, न ही अंग आत्मा को छोड़कर रह सकते हैं।

एवमुहैव – एवम् उ ह एव

श्रुति उद्घोष कर रही है कि "इस प्रकार यह ऐसा ही प्रसिद्ध है।" दुनिया जानती है कि आत्मा से रहित अंग मर जाता है, मुर्दा होता है। अर्थात् जो भी वर्ष-संवत्सर, सम अहोरात्र कालात्मक इस विशिष्ट विषुव दिवस से प्रारम्भ नहीं होते, परिगणित नहीं होते, वे मृत हैं, वे मुर्दा हैं। उनका धरती की जीवंत आर्तव ऋतुगामी प्रकृति से कुछ लेना-देना नहीं।

तदपरेषां स्विदितमह्नां परेषामित्यपरेषाञ्चैव परेषाञ्चेति ब्रूयात्स वा एष संवत्सरः। (पूर्व मन्त्र के अनुसार)

२-सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी का महासुपर्ण के रूप में वैदिक रूपक

पृथ्वी की गति में गतिमान इस संवत्सर कालचक्र को श्रुति एक अति सुन्दर साहित्यिक रूपक से भी समझाती है।

अथ ह वा महासुपर्ण एव यत् संवत्सरः।

तस्य यान् पुरस्ताद्विषुवतः षण्मासानुपयन्ति सोऽन्यतरः पक्षः। अथ यान्षडुपरिष्टात्सोऽन्यतरः। आत्मा विषुवान्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यत्र वा आत्मा तत्पक्षौ यत्र वा पक्षौ तदात्मा। न वा आत्मा पक्षावतिरिच्यते नात्मानम्पक्षावतिरिच्येते। एवमु हैतदवरेषाञ्चैव परेषाञ्च भवति।[1]

हिन्दी व्याख्या– २३अंश २८ कला के निश्चित झुकाव पर नाचती हुई, सूर्य की परिक्रमा करती पृथ्वी की गति में, महाकाश में इस संवत्सर कालचक्र को उड़ता हुआ देखते हुए, **''अथ''** इस मंगल वाचक शब्द से श्रुति अद्भुत रूपक द्वारा इसे हृदयङ्गम कराते हुए कहती है कि, यह संवत्सर काल चक्र सुंदर पंखों वाला महाकाश में उड़ता हुआ महान पक्षी, महागरुण है। इस संवत्सर कालचक्र रूपी महासुपर्ण के आदि विषुव की प्राप्ति के पूर्व से अर्थात् मध्य विषुव से आदि विषुवपर्यन्त जो छः महीने पड़ते हैं, एक पक्ष हैं, अर्थात् दक्षिणावर्त ही है इस महासुपर्ण पक्षी का दाहिना पंख। अब जो छः महीने ऊपर की ओर से होते हैं, उत्तरावर्त के हैं, वे द्वितीय पक्ष हैं, अर्थात् उत्तरावर्त ही है, इस महासुपर्ण पक्षी का बायाँ पंख। इस प्रकार विषुव से विषुव पर्यन्त, इस चक्र की व्यासात्मिका ऋजुरेखा जो दोनों विषुवों को १८० अंश के कोण पर जोड़ती है, इस महासुपर्ण प़क्षी की रीढ़ रज्जु है, आदिविषुव मुख और मध्यविषुव पुच्छ है। इसी तथ्य को समझाने के लिए श्रुति कह रही है कि विषुवान्, इस महाकाश में उड़ रहे महासुपर्ण पक्षी का आत्मा है, शरीर है। दक्षिणावर्त और उत्तरावर्त इस पक्षी के दो पंख हैं। जहाँ आत्मा रहता है, शरीर रहता है, वहीं पक्षी के दोनों पंख भी रहते हैं। जहाँ दोनों पंख रहते हैं, वहीं पक्षी का शरीर भी रहता है। न तो शरीर पंखों को छोड़ता है, और न ही दोनों पंख शरीर को छोड़ कर रह सकते हैं। निश्चय ही विषुवान्, और पक्षों का यह सम्बंध ऐसा ही है। यही तथ्य गोपथ श्रुति ४/१७ में भी वर्णित है।

श्रुति उद्घोष कर रही है, इस प्रकार यह ऐसा ही प्रसिद्ध है, दुनिया जानती है, कि आत्मा से रहित अंग मर जाता है, मुर्दा होता है। अर्थात् जो भी वर्ष संवत्सर सम अहोरात्र कालात्मक इस विशिष्ट विषुव दिवस से प्रारंभ नहीं होते, परिगणित नहीं होते, वे मृत हैं, वे मुर्दा हैं। उनका धरती की इस जीवंत आर्तव-ऋतुगामी प्रकृति से कुछ लेना-देना नहीं।

---

१. शतपथ ब्राह्मण १२/२/३/७ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"अवरेषाञ्चैव परेषाञ्च भवति।" यहीं से धरती के एक गोलार्ध में वसंत ऋतु का आगाज होता है, तो विपरीत गोलार्ध में शरद ऋतु का। इसलिए एक गोलार्ध में जब यह वासंतिक विषुव के रूप में आता है, तो विपरीत गोलार्ध में ठीक यही दिन शारदीय विषुव के रूप में। दुनिया के लोगों देखो, यह है धरती का विशिष्ट सम अहोरात्र कालात्मक विषुव दिवस। इस दिन होगा धरती पर दिन-रात का मान समान, १२ घंटे का दिन, १२ घंटे की रात । उत्तरी गोलार्ध का शारदीय विषुव और दक्षिणी गोलार्ध का वासंतिक विषुव।

वर्ष के आदि विषुव से छः माह बाद पड़ने वाला दूसरा विषुव वर्ष का मध्य विषुव है। वर्ष के आदि विषुव से आरंभ हुआ उत्तरावर्त इस मध्य विषुव के आने के साथ ही पूर्ण हुआ, और साथ ही दक्षिणावर्त का आरंभ हो गया। इस विषुव से १८० अंश के पृथ्वी के शेष परिक्रमा-पथ पर चलने से क्रमशः ३०-३० अंश की दूरी के दक्षिणावर्त के छः माह पूर्ण होने के साथ यह वर्ष पूर्ण होता है। यहीं से आदि विषुव के साथ नववर्ष का आरंभ होता है।

विषुव दिवस से ही संवत्सर का आरम्भ होता है, इस तथ्य को ऐतरेय श्रुति में बहुत ही बल देकर कहा गया है, वे निम्नलिखित हैं—

"यथा वै पुरुष एवं विषुवान्। तस्य यथादक्षिणोऽर्ध एवं पूर्वोऽर्ध विषुवतो यथोत्तरोऽर्ध एवमुतत्तरोऽर्धो विषुवतस्तस्मादुत्तर इत्याचक्षते। प्रबाहुक्सतः शिर एव विषुवान्। बिदलसंहित इव वै पुरुषस्तद्धाति स्यूमेव मध्ये शीर्ष्णो विज्ञायते।[1]"

जैसे लोक में पुरुष है, वैसे ही विषुवान् (विषुव दिवस) है। विषुवान् का पूर्वार्ध पुरुष के दक्षिण अंग के समान है। विषुवान् का उत्तरार्ध पुरुष के वाम अंग के समान है। इसीलिए उस विषुव के बाद को उत्तर कहते हैं। विषुव, वाम अंग एवं दक्षिण अंग के सम अवस्था में स्थित पुरुष के सिर के समान है। पुरुष दक्षिण अंग एवं वाम अंग रूप दो भागों से बीज के दो दलों के समान संयोजित है। इसलिए दो दलों के संधान के कारण, सिर के मध्य से यह पुरुष शिला हुआ सा प्रतीत होता है।

१. ऐतरेय ब्राह्मण १८।८ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मीमांसा– यहाँ संवत्सर काल की तुलना पुरुष के शरीर से की गयी है। जैसे व्यक्ति का शरीर दक्षिणांग और वामांग दो भागों में जुड़ा हुआ है इसी प्रकार संवत्सर काल का शरीर भी दोनों विषुओं से, दक्षिणावर्त और उत्तरावर्त रूप छः-छः महीनों के साथ जुड़ा हुआ है। इसमें आदि विषुव, जिससे पहले दक्षिणावर्त आता है, और जिसके बाद उत्तरावर्त आता है, यह विषुव इस संवत्सर काल का सिर है, और मध्य विषुव उसका अधोभाग है। इस प्रकार यह संवत्सर इन दोनों विषुओं के द्वारा छः-छः महीनों के साथ जुड़ा हुआ है।

"तदाहुर्विषुवस्यैवैतदहः शंसेद्विषुवान् वा एतदुक्थानामुक्थं विषुवान् विषुवानिति ह विषुवन्तो भवन्ति श्रेष्ठतामश्नुवत इति। तत्तन्नादृत्यं संवत्सर एव शंसेद्रेतो वा एतत्संवत्सरं दधतो यन्ति।[1]"

वही कहा गया है कि विषुव के इस दिन से ही संवत्सर का अनुशासन करना चाहिए। यह विषुव **उक्थों** के मध्य **उक्थ** है, अर्थात् वेदादि शास्त्रों में बार-बार स्पष्ट किया गया है, अतः विषुव नाभि पर आने वाला सम रात्रि-दिन काल वाला दिन ही विषुव दिन है। वह अहोरात्र दिवस, जिसमें दिन और रात्रि का मान समान हो जाता है, विषुव दिवस कहलाता है। कालचक्र की विषुव नाभि पर सूर्य के दिखने से अर्थात् पृथ्वी की विषुवत् रेखा पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ने पर यह विषुव दिवस होता है। यहाँ श्रुति ने यह स्पष्ट किया है कि जो इस विषुव को जानते हैं, इस विषुव से संवत्सर सत्र का आरंभ होना जानते हैं वे संवत्सर ज्ञान की श्रेष्ठता को प्राप्त करते हैं।

"संवत्सरो ह्येतदहराप्नोति संवत्सरं ह्येतदहराप्नुवन्त्येष ह वै संवत्सरेण पाप्मानमपहतः एष विषुवताङ्गेभ्यो हैव मासैः पाप्मानमपहते शीर्ष्णो विषुवता। अप संवत्सरेण पाप्मानं हतेऽप विषुवता य एवं वेद।[2]"

क्योंकि संवत्सर से ही इस विषुव दिवस को प्राप्त करते हैं, और क्योंकि इस विषुव दिवस से ही संवत्सर को प्राप्त करते हैं, अर्थात् संवत्सर की समाप्ति पर विषुव दिवस को प्राप्त कर वहीं से नवसंवत्सर का आरंभ करते हैं। यह संवत्सर का ज्ञानवान्, इस संवत्सर ज्ञान के द्वारा संवत्सर के

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण १८।८ । २. ऐतरेय ब्राह्मण १८।८ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अज्ञान रूप पापों को नष्ट करता है, और यह मध्य विषुव दिवस के ज्ञान से, मासों के ज्ञान के द्वारा, जो ऋतुओं के अंगरूप हैं, उनके ज्ञान से कृषि के अंगभूत कृषि विषयक अज्ञानरूप पापों को नष्ट करता है। और शीर्ष विषुव दिवस अर्थात् आदि विषुव दिवस के ज्ञान के द्वारा अपने सिर से अज्ञानात्मक पापों को नष्ट करता है।

जो इस प्रकार जानता है, वह संवत्सर ज्ञान के द्वारा और विषुव ज्ञान के द्वारा अपने सम्पूर्ण पापों को नष्ट करता है।

ऋग्वेद में ही कालज्ञापक मंत्र के अतिरिक्त मंत्रों में भी संवत्सर और मास विज्ञान को स्पष्ट किया गया है, देखें यह मंत्र—

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेदनावः समुद्रियः[१]।।

जिन्होंने समुद्र के ऊपर अंतरिक्ष में उड़ते हुए पक्षियों को और उनके पाँवों को देखा और समझा। उसी प्रकार समुद्र में वेग से चलती हुई नौका को भली भाँति जाना।

मीमांसा– समुद्र के ऊपर उड़ते हुए पक्षियों को समुद्र के भीतर की ओर दूर जाते हुए स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस पक्षी के पाँव और उसका अधो भाग स्पष्ट दिख रहा है। उसका मुख की ओर का आगे का भाग नीचे की ओर झुका हुआ दिखता है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि मानों पक्षी किञ्चित् वृत्ताकार झुकाव में उड़ रहा है। इससे स्पष्ट ज्ञान होता है कि पृथ्वी गोल है।

इसी प्रकार सागर में वेग से चलती हुई नौका में बैठे हुए व्यक्ति को सागर के टापू अपनी ओर आते हुए दिखते हैं। और समीप के टापू अपने से दूर जाते हुए दिखते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी पर स्थित व्यक्ति को, पृथ्वी से बहुत दूर स्थित, दिन में सूर्य और रात्रि में चाँद तारे पूरब से पश्चिम को जाते हुए दिखते हैं। इससे यह तथ्य स्पष्ट होता है कि जैसे समुद्र में चल रही नौका में स्थित व्यक्ति को, नौका स्थिर और टापू चलते हुए दिखाई देते हैं। किन्तु मूलतः नौका चल रही होती है, टापू नहीं, ठीक उसी प्रकार इस पृथ्वी पर विद्यमान प्राणियों को अपनी धुरी पर पश्चिम से पूरब को घूम रही पृथ्वी के साथ पश्चिम से पूरब जाने के कारण बहुत दूर आकाश में स्थित

---

१. ऋग्वेद १/१२५/७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूरज चाँद तारे पूरब से पश्चिम को जाते हुए दिखते हैं। इस ज्ञान से अपनी धुरी पर पृथ्वी के घूमने के ज्ञान को स्पष्ट किया गया है।

वेदमासो धृतव्रतः द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते[1]।।

जो नियम से ऋतु-क्रम से आने वाले द्वादश मासों को जानता है, जिनसे सम्पूर्ण प्रजा का पालन होता है, और जो उस विशिष्ट दिन को जानता है, जिनसे इन सबका परिगणन होता है।

मीमांसा– यहाँ इन दो मंत्रों में उक्त गम्भीर विज्ञान को जनसामान्य के लिए सरलता से समझाने का प्रयास किया गया है।

३-वर्ष का आरम्भ विषुव दिवस से

धरती के बुद्धिजीवियो, देखो संवत्सर या वर्ष का आरम्भ धरती के इस विशिष्ट सम अहोरात्र कालात्मक आदि विषुव दिवस से होता है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर १२ घंटे का दिन १२ घंटे की रात उत्तरी गोलार्ध का वासंतिक विषुव और दक्षिणी गोलार्ध का शारदीय विषुव। इन विषुवों पर सम्पूर्ण धरती की प्रकृति उल्लसित हो उठती है।

इस विषुव दिवस की प्रकृति को देखो! यह खिले कुसमों, गुनगुनाते भौरों, वृक्षों में निकले लाल-लाल किसलयों, बौराई फलवन्ती मदमाती आम्रमञ्जरियों, अपनी मंद-मंद, मधु-मधु बहती हवाओं से, धरती के सारे प्राणियों को सहलाती, उल्लसित करती गुदगुदाती, खिलखिलाती व्यक्तियों के जन्म दिनों से मनाये जाने वाले फर्जी, कहीं ठंड से सिकुड़े, कहीं गर्मी से जलते, कभी २० दिन आगे, कभी २० दिन पीछे, निष्प्राण, निर्जीव, लोगों द्वारा कल्पित तथाकथित नववर्षों की खिल्ली उड़ा रही है।

हे दुनिया के बुद्धिजीवियो! भूवैज्ञानिको! अंतरिक्ष वैज्ञानिको! आँख खोल के देखो! कान लगा के सुनो! इस विषुव दिवस पर प्रकृति के साथ भौंरे भी ऋग्वेद का यह गीत गुनगुना रहे हैं।

मेरा अनुरोध है कि मधुमास के आरम्भिक प्रथम प्रभात में थोड़ा घर से बाहर निकलें और इस वेद गान का अनुभव करें—

मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्न सन्त्वोषधीः।
मधुनक्तमुतोषसो, मधुमत्पार्थिवं रजः।

---

१. ऋग्वेद १/१२५/८।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मधु द्यौरस्तु नः पिता।
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमारस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।[१]

मधुमास की यह मधुर-मधुर बहती कोमल शीतल सुखद स्पर्शी हवायें परम चैतन्य के आनन्द के उल्लास जैसी हैं। सागर मधु वर्षा रहे हैं। हे परमात्मन्! मेरी कृषि वनस्पतियाँ भी मधुमय फलवती हों।

रात्रि मधुमयी हो गयी है। यह ऊषा मधुमय है। धरती की यह धूल भी मधुमय हो रही है। हे हमारे द्युतिमान पालक परमात्मन् ! आप हमारे लिए मधुमय हों।

वनस्पतियाँ हमारे लिए मधुमय हों। सूर्य हमारे लिए मधुमय हों। मेरी गायें, दूध, दही, आमिक्षा, घृतादि मधु देने वाली मधुमती हों।

यहीं से धरती के एक गोलार्ध में वसंत ऋतु का आगाज होता है, तो विपरीत गोलार्ध में शरद ऋतु का। इसलिए एक गोलार्ध में जब यह वासंतिक विषुव के रूप में आता है, तो विपरीत गोलार्ध में ठीक यही दिन शारदीय विषुव के रूप में। यही यह संवत्सर है।

४-विषुव से मास विभाजन

पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में स्थलीय आबादी अधिक होने से इस गोलार्ध में वसंत ऋतु के आरम्भक विषुव से नवसंवत्सर का आरंभ माना गया है। इसलिए इसे संवत्सर का **"आदि विषुव या महाविषुव"** और दूसरे को **मध्य विषुव** कहते हैं। इसी के साथ वैदिक नवसंवत्सर का आरम्भ होता है। इस महाविषुव को धरती के उत्तरी गोलार्ध में वसंत ऋतु का आरम्भक होने से वासंतिक विषुव एवं दक्षिणी गोलार्ध में शरद ऋतु का आरंभक होने से शारदीय विषुव कहा जाता है। यहाँ से पृथ्वी दीर्घ चक्राकार सूर्य-परिक्रमा-पथ पर प्रत्येक ३० अंश चलने में जितना समय लगाती है, वही एक माह का समय होता है। तदनुसार सभी छः ऋतुओं के २-२ महीनों कुल १२ महीनों के नाम, और प्रत्येक मास की ३० अंश के परिक्रमा पथ पर गतिमान पृथ्वी को लगने वाला समय जो उस माह का

---

१. ऋग्वेद १/१०/६/९। यजुर्वेद १३/२७-२९।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समय होता है, दिन-घंटा-मिनट-सेकंड में नीचे दिया जा रहा है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि सारी पृथ्वी पर १२ घंटे का दिन और १२ घंटे की रात के समान मान वाले इस विषुव दिवस से यदि उत्तरी गोलार्ध में वसंत तो दक्षिणी गोलार्ध में शरद् ऋतु का आरंभ होता है।

तदनुसार ही महीनों के आर्तव नाम भी होते हैं। किन्तु पृथ्वी की परिक्रमण-गति से सम्बद्ध होने के कारण, महीनों का समय अपरिवर्तित रहता है । यह तथ्य भी यहाँ नीचे स्पष्ट किया जा रहा है।

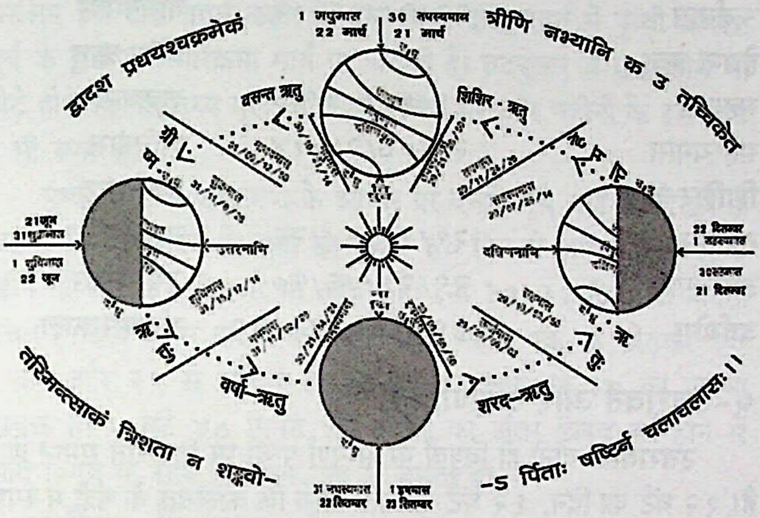

आदिविषुव से उत्तरावर्त

उत्तरी गोलार्ध	माह समय	दक्षिणी गोलार्ध
वसंत ऋतु	**दिन/घंटा/मिनट/सेकेंड**	**शरद ऋतु**
मधुमास	३०/१०/२१/१४	इषमास
माधवमास	३१/१०/१२/५०	ऊर्जमास
ग्रीष्म ऋतु		**हेमन्त ऋतु**
शुक्रमास	३१/११/०८/२६	सहमास

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शुचिमास	३१/१५/१७/१४	सहस्यमास
वर्षा ऋतु		**शिशिर ऋतु**
नभमास	३१/११/०२/२६	तपमास
नभस्यमास	३०/२१/५४/२४	तपस्यमास

मध्यविषुव से दक्षिणावर्त

शरद ऋतु		**वसंत ऋतु**
इषमास	३०/०८/५६/५०	मधुमास
ऊर्जमास	२९/२०/०६/०२	माधवमास
हेमन्त ऋतु		**ग्रीष्म ऋतु**
सहमास	२९/१०/५२/५०	शुक्रमास
सहस्यमास	२९/०७/२५/१४	शुचिमास
शिशिर ऋतु		**वर्षा ऋतु**
तपमास	२९/११/२४/२६	नभमास
तपस्यमास	२९/२१/०६/५०	नभस्यमास
वर्षयोग	**३६५/०५/४८/४६**	**संवत्सरकाल**

५-उत्तरावर्त और दक्षिणावर्त

उत्तरावर्त- दोनों ही विषुवों पर सम्पूर्ण पृथ्वी पर दिन-रात समान होते हैं। १२ घंटे का दिन, १२ घंटे की रात। जैसा कि कालचक्र के मंत्रों में स्पष्ट किया गया है कि, पृथ्वी, सूर्य की परिक्रमा दीर्घ वृत्ताकार पथ में करती है, इसलिए जिस विषुव से पृथ्वी सूर्य से दूर जाती हुई दीर्घ परिधि पर परिक्रमण करती है, तब महीनों की ३०-३० अंशों की दूरी क्रमशः ९० अंशों अर्थात् तीन महीनों तक बढ़ती ही जाती है। पुनः तीन महीनों ९० अंशों तक क्रमशः उसी प्रकार मध्य विषुव तक आती है। स्वभाविक रूप से अधिक दूरी चलने में समय भी अधिक लगता है। दूर जाने के क्रम से पृथ्वी के झुकाव का उत्तरी गोलार्ध और ध्रुव, सूर्य के सामने से घूमता है। इसलिए इसे **उत्तरावर्त** कहते हैं।

दक्षिणावर्त- इसके ठीक उलट जिस विषुव से पृथ्वी सूर्य के समीप

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाती हुई लघु परिधि पर परिक्रमण करती है, महीनों की ३०-३० अंशों की दूरी क्रमशः ९०अंशों तक अर्थात् ३ महीनों तक घटती ही जाती और ९० अंश पर ठीक दक्षिण नाभि पर पहुँचती है। पुनः इस दक्षिण नाभि से उसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा बढ़ती हुई ९०अंश अर्थात् तीन माह चलकर आदि विषुव तक आती है। स्वाभाविक रूप से परिक्रमा-मार्ग रूप परिधि के घटने से इस दूरी को चलने में समय भी कम लगता है। मध्य विषुव से परिक्रमा पथ सूर्य के समीप से घूमने के साथ ही पृथ्वी के झुकाव का दक्षिणी गोलार्ध और दक्षिणी ध्रुव सूर्य के प्रकाश की ओर हुआ घूमता है। इसलिए इसे दक्षिणावर्त कहते हैं। इस प्रकार दक्षिणावर्त में पृथ्वी क्रमशः सूर्य के समीप से परिक्रमा मार्ग पर चलती है। तदनुसार वे छः महीने भी छोटे होते हैं। यह तथ्य मूल वैदिक कालचक्र पर और महीनों के इस चार्ट में भी स्पष्ट है।

पृथ्वी के इसी परिक्रमण के आधार पर बनाये गये चार्ट को देखने से स्पष्ट है कि, उत्तरावर्त के सभी छः महीने ३० दिन से अधिक हैं, और ४ महीने तो साढ़े ३० दिन से भी अधिक हैं। इन्हें ३१-३१ दिनों का मानना उचित है। इसी प्रकार दक्षिणावर्त के सभी ६ महीने एक को छोड़कर ३० से कम और २९ से अधिक हैं। इसलिए इन सभी को ३० का मानना उपयुक्त है। ५ घंटे ४८ मिनट ४६ सेकंड का अंतर विषुव वर्ष होने से आदि विषुव के साथ ही प्रथम माह में जुड़ता है।

६-नाड़ीवृत्त, विषुववृत्त और कालवृत्त

पृथ्वी के अपने अक्ष पर परिभ्रमण के कारण अन्तरिक्ष में- खगोल में रात्रि में नक्षत्र प्रतिदिन पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हुए दिखते हैं, उनका वह मार्ग वृत्ताकार दिखता है। ध्रुव तारे के समीप के नक्षत्र मंद गति से चलते हुए दिखते हैं, जबकि मध्याकाश में स्थित नक्षत्र तीव्र गति से चलते हुए दिखाई देते हैं। नक्षत्रों के भ्रमण की दृष्टि से नभमंडल में, जिसे खगोल भी कहते हैं, कल्पित पूर्वापर वृत्त को जिसके द्वारा खगोल का मध्य से उत्तरी गोलार्ध और दक्षिणी गोलार्ध के रूप में दो भाग होता है, उसे ही ज्योतिषी लोग नाड़ीवृत्त, विषुववृत्त या कालवृत्त कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

७-क्रान्तिवृत्त

अपने अक्ष पर २३अंश २८कला झुकी हुई पृथ्वी, अपने अक्ष पर घूमती हुई दिन और रात करती हुई, साथ ही सूर्य की परिक्रमा करती हुई, संवत्सर आर्तव वर्ष का निर्माण करती है। पृथ्वी की इस वार्षिक परिक्रमण गति के कारण विषुव वृत्त के समीपवर्ती नक्षत्रों के क्रमिक दर्शनपूर्वक सूर्य की ऋतु-परिवर्तन के साथ प्रतीत होने वाली वार्षिक गति भी दिखाई पड़ती है। इस खगोल में पृथ्वी की इस वार्षिक गति के द्वारा नक्षत्रों का और सूर्य का भी मार्गात्मक वृत्त कल्पित होता है। यह वृत्त नाड़ीवृत्त या विषुव वृत्त से २३ अंश २८ कलात्मक झुकाव से युक्त होता है। पृथ्वी में झुकाव के कारण उसकी गति से कल्पित यह वृत्त ही क्रान्तिवृत्त कहा जाता है।

८- आदि विषुव– अपनी धूरी पर २३अंश २८ कला झुकी हुई, अपने झुकाव को बिना बदले हुए सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी से अपनी उदय की दिशा में पूर्व से उत्तर की ओर खिसकता हुआ सूर्य उत्तर को जाता हुआ, जहाँ इस विषुववृत्त का अतिक्रमण करता है, वहाँ यह सूर्य के द्वारा विषुव वृत्त का संक्रमण विन्दु ही आदि विषुव सम्पात कहा जाता है। इस स्थिति में सूर्य की परिक्रमा करती हुई, और अपने अक्ष पर घूमती हुई, पृथ्वी के मध्य भाग में सूर्य की रश्मियाँ सीधी पड़ती हैं। अत एव सारी पृथ्वी पर इस दिन, रात्रि और दिन का काल मान समान होता है। १२ घंटे का दिन और १२ घंटे की रात्रि। वेदों में यह दिन आदिविषुव के रूप में प्रसिद्ध है; क्योंकि इसी दिन से नववर्ष का आरम्भ होता है। उत्तरी गोलार्ध में इसी दिन से वसंत ऋतु का आरम्भ होता है, और पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में ही स्थलीय भाग अधिक होने से मानवीय आबादी अधिक है। वर्तमान में सम्पूर्ण भारत उत्तरी गोलार्ध में पड़ता है, इसलिए भारतीय पञ्चांगों में इसे ही वासंतिक विषुव कहा जाता है।

९-मध्य विषुव– इसी प्रकार पृथ्वी की द्विविध गति के कारण, उत्तर नाभि को प्राप्त होकर अर्थात् उत्तर दिशा में जाने की सीमा पर पहुँच कर सूर्य पुनः उत्तर से दक्षिण को गति करता हुआ-सा दिखता है। इस प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१८० अंशात्मक क्रान्ति वृत्तीय मार्ग को पूर्ण करके जब वह पुनः उत्तर से दक्षिण जाते हुए विषुव वृत्त का अतिक्रमण करता है, तब यह सूर्य के द्वारा विषुव वृत्त का संक्रमण बिन्दु ही मध्य विषुव कहा जाता है। ६ मास के अन्तर से पुनः इस संक्रमण बिन्दु पर सूर्य के होने से पृथ्वी के मध्य भाग में सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं, और इस कारण पुनः इस दिन सम्पूर्ण पृथ्वी पर रात और दिन का काल मान समान होता है। १२ घंटे की रात्रि और १२ घंटे का दिन। वेद में यह दिवस मध्यविषुव दिवस के रूप में माना गया है। इस प्रकार ये दोनों विषुव ६-६ महीने के अंतराल से बराबर आते रहते हैं, पहला वर्ष का आरंभिक आदिविषुव, दूसरा वर्ष का मध्य, मध्यविषुव।

१०-विषुवनाभि– पृथ्वी से सूर्य के जिस बिन्दु पर दिखने से ६-६ महीने के अंतराल पर यह विषुव दिवस होते हैं उस विन्दु को विषुवनाभि कहते हैं।

११-उत्तरनाभि– पृथ्वी की द्विविध गति के कारण सूर्य प्रतिदिन उत्तर की ओर खिसकते हुए जब सर्वाधिक उत्तर की ओर उदित होते हुए दिखते हैं और उससे अधिक उत्तर न जाकर जिस बिन्दु के बाद वे वहाँ से थोड़ा-थोड़ा प्रतिदिन दक्षिण हटकर उदित होने लगते हैं उस अंतिम उत्तर किनारे पर सूर्य के उदित होते सूर्य के बिन्दु को उत्तर नाभि कहते हैं।

१२-दक्षिणनाभि– उत्तर नाभि पर पहुँचने के बाद जब सूर्य थोड़ा-थोड़ा दक्षिण की तरफ उदित काल में खिसककर उदित होते दिखते हैं और छः महीने के अंतराल के बाद सर्वाधिक पूरब दिशा में उदित होने के दक्षिण किनारे पर उदित होते हैं, जिससे और दक्षिण न जाकर उत्तर की ओर खिसकना आरम्भ हो जाता है, उस बिन्दु को दक्षिणनाभि कहते हैं।

१३-उत्तरायण व दक्षिणायण– उक्त दक्षिणनाभि से उत्तरनाभि तक पहुँचने के छः महीने के समय को उत्तरायण कहते हैं और इसी प्रकार उत्तरनाभि से दक्षिणनाभि तक के छः महीने के समय को दक्षिणायण कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तृतीय अध्याय
षड् ऋतु

१-वसंत ऋतु

यजुर्वेद में वसंत ऋतु का वर्णन इस प्रकार है—

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्ताम् आप ओषधयः कल्पन्ताम् अग्नयः पृथङ्मम ज्येष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसो द्यावापृथिवी इमे वासन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविसन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्।।[1]

हिंदी अर्थ–प्रतिदिन परिवर्तित हो रही ऋतु परिवर्तनकारी ऊष्णता में जो रहस्य है, हे धरित्रि! वह तुम हो।

वसंत ऋतु के अंगभूत अवयव, मधुमास और माधवमास, इन सूर्य और पृथ्वी की रहस्यमयी गति में प्रतिदिन परिवर्तित हो रही ऊष्णता के द्वारा इस ऋतु को सम्पादित करें। हे द्यावापृथिवी! आप ऋतु अनुकूल ही वर्षा और औषधियों-फसलों को सम्पादित करें।

समान व्रत और कर्म हैं जिनके, ऐसी प्रतिदिन अलग-अलग ऊष्णता की संपादक, ये ऋतु-नियामक अग्नियाँ, कृषिकर्म आदि सत्कर्म में लगे हमारे उत्कर्ष के लिए हों।

द्यावापृथिवी-निर्मित परिवर्तन-सातत्य में संलग्न ये अग्नियाँ सब प्रकार से ऋतु अनुकूल सम्पादन करें। जिस प्रकार इन्द्रियाँ, आत्मा इन्द्र के अनुकूल रहती हैं, उसी प्रकार पृथ्वी देवता द्वारा संपादित ये अग्नियाँ अपने ध्रुव निश्चित आर्तव स्वरूप में स्थित हों।

---

१. यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता १३/२७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मीमांसा—आप प्रभात में बाहर आनंद लेने निकलें। गाँव में हो या किसी ऐसे स्थल में जहाँ महुआ के पेड़ हों तो महुआ के पेड़ तक चले जायँ। आप देखेंगे कि महुआ के रसाल फूल, मधूक पुष्प, पेड़ से धरती पर आ रहे हैं। उनका मधुरस लेने एक-दो मधुमक्खियाँ भी आईं हैं। चाहें तो कुछ मधूक आप भी ले लें। मुख प्रक्षालन हो गया हो तो स्वाद भी ले सकते हैं। यह प्रकृति वैदिक ऋतु के साथ चलती है, केवल वही प्राकृतिक हैं।

प्राकृतिक तथ्य यह है कि मधु का अर्थ है रस इस महीने में वासन्तिक (रबी की) फसलें उनकी फलियाँ रस-सम्पन्न होती हैं, और पक कर तैयार होती हैं। कुछ एक आनी भी शुरू हो जाती हैं। **मधोर्भवः माधवः**– जो मधु से उत्पन्न होता है वह माधव है। जो फलियाँ मधुमास में रस से परिपूर्ण हो जाती हैं वही रस से पूर्ण फसलें माधव मास में पूर्ण रूप से पककर तैयार हो जाती हैं। इसलिए पकी हुई ये फसलें किसान काटकर खलिहान में तैयार करता है, और फसल की राशि घर लाते हुए खुशी से **'माधव माधव'** बोलता है। इस प्रकार माधव मास किसानों की अन्नप्राप्ति की प्रसन्नता का उल्लास है।

इसलिए इसे वेद में किसानों की प्राकृतिक प्रसन्नता के लिए, साथ ही प्रकृति-प्रकोप-शांति के लिए और ऋतुओं को स्व-स्वरूप में व्यवस्थित करने के लिए द्यावापृथिवी से यह प्रार्थना है। यह वेद प्रार्थना आप सबके लिए मंगलकारी हो।

विषुव दिवस ही मुख्य वसंत है इसलिए इस विषुव दिवसीय वसंत से ही नववर्ष का आरंभ होता है, जिस प्रकार विषुव दिवस को संवत्सर का शिर कहा है उसी प्रकार वसंत को भी संवत्सर का शिर कहा गया है। देखें ये श्रुतियाँ—

तस्य संवत्सरस्य वसन्तः शिरः।[१]
उस संवत्सर का वसंत ही सिर है।
वसन्तः समिद्धोऽन्यान् ऋतून् समिन्द्धे।[२]
वसन्त के आने के बाद अन्य ऋतुएँ आती हैं।
मुखं वा एतदृतूनां यद्वसन्तः।[३]
अथवा यह जो वसन्त है ऋतुओं का मुख है।

---

१. तैतिरीय ३/११/१०। २. शतपथ ब्रा. ३/१/४/७। ३. तैतिरीय १/१/२/६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यदेव पुरस्ताद् वाति तद् वसन्तस्य रूपम् ।[१]

जो यह संवत्सर के आरम्भ से चलता है वह वसंत का रूप है।

मीमांसा– ऐतरेय श्रुति द्वारा कहा गया कि यह विषुव संवत्सर रूप शरीर का सिर है, पुनः यहाँ कहा गया कि यह वसंत संवत्सर का सिर है, इससे स्पष्ट है कि उत्तरी गोलार्ध में आदि विषुव के साथ वसंत का आरम्भ होता है, और चूँकि विषुव दिवस से ही नवसंवत्सर का आरम्भ होता है और वहीं से वसंत का भी आरंभ होता है। इसीलिए विषुव और वसंत को संवत्सर और ऋतुओं का मुख कहा गया। इस प्रकार इन श्रुतिओं से संवत्सर का आरम्भ विषुव और वसंत होना स्पष्ट किया गया है। चूँकि वसंत का पहला महीना मधुमास होता है इसलिए विषुव दिवस के साथ मधुमास का आरम्भ होता है। यहीं से ३०-३० अंश की दूरी तक सूर्य की परिक्रमा में निरन्तर रत पृथ्वी द्वारा लगने वाले समय को एक-एक माह कहा जाता है।

२. ग्रीष्म ऋतु

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्ताम् आप ओषधयः कल्पन्ताम् अग्नयः पृथङ्मम ज्येष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसो द्यावापृथिवी इमे ग्रैष्मावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविसन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्।[२]

हिंदी अर्थ– प्रतिदिन परिवर्तित हो रही ऋतु परिवर्तनकारी ऊष्णता में जो रहस्य है, हे धरित्रि! वह तुम हो।

ग्रीष्म ऋतु के अंगभूत अवयव शुक्रमास और शुचिमास इन सूर्य और पृथ्वी की रहस्यमयी गति में प्रतिदिन परिवर्तित हो रही ऊष्णता के द्वारा इस ऋतु को सम्पादित करें। हे द्यावापृथिवी! आप ऋतु-अनुकूल ही वर्षा और औषधियों फसलों को सम्पादित करें।

समान व्रत और कर्म हैं जिनके, ऐसी प्रतिदिन अलग-अलग ऊष्णता की सम्पादक, ये ऋतु नियामक अग्नियाँ, कृषिकर्म आदि सत्कर्म में लगे हमारे उत्कर्ष के लिए हों।

---

१. शतपथ ब्रा.२/२/३/४। २. यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता १४/०६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्यावापृथिवी निर्मित परिवर्तन सातत्य में संलग्न ये अग्नियाँ सब प्रकार से ऋतु अनुकूल सम्पादन करें। जिस प्रकार इन्द्रियाँ आत्मा-इन्द्र के अनुकूल रहती हैं, उसी प्रकार पृथ्वी देवता द्वारा संपादित ये अग्नियाँ अपने ध्रुव निश्चित आर्तव स्वरूप में स्थित हों।

मीमांसा– वेद में प्रकृति प्रकोप शान्ति के लिए और ऋतुओं को स्वस्वरूप में व्यवस्थित करने के लिए द्यावापृथिवी से यह ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में की जाने वाली प्रार्थना है।

''शोचतेर्ज्वलतिकर्मणः'' निरुक्त की इस निरूक्ति से निघण्टु पठित **शुचदीप्तौ**[1] इस धातु से शुक्र शब्द बनता है। अर्थात् जिस माह में सूर्य की तपिश आग की भाँति जलती हुई लगती है, और साथ ही यह तपिश प्रथम दिन से अंतिम दिन तक बढ़ती ही जाती है और अंतिम दिन उत्तरावर्त के सबसे बड़े दिन के साथ शिखर पर होती है। इसलिए इसे शुक्र मास कहते हैं। इस प्रकार शुक्र मास का यह अंतिम दिन पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध का सबसे बड़ा दिन होता है और रात्रि सबसे छोटी। क्योंकि सूर्य की परिक्रमा में निरन्तर गतिमान पृथ्वी इसी दिन उत्तर नाभि पर पहुँचती है, इसलिए यह दिन उत्तरायण का भी अंतिम दिन होता है।

उत्तर नाभि पर शुक्रमास के अंतिम दिवस पर पृथ्वी के पहुँचने से पृथ्वी से सूर्य आकाश में उत्तर शीर्ष पर उदित होता और तपता दिखाई देता है। इस दिन की किरणें पृथ्वी के उत्तरी फलक पर सीधी पड़ती हैं। इस फलक पर ही पृथ्वी पर **उत्तरवृत्त रेखा** की कल्पना की गयी है। भ्रान्तिवश मध्यकालीन ज्योतिषियों ने इसे **कर्क रेखा** कहा है। किन्तु अयन गति के कारण मध्यकालीन ज्योतिषियों की कर्क राशि और तदनुरूप कर्क रेखा और कर्क वृत्त की कल्पना पर उत्तर नाभि होने की बात पूर्णतया गलत हो चुकी है। वैदिक ऋषियों को **अयन गति** का सम्यक् ज्ञान था, इसलिए उन्होंने नक्षत्र कल्पित आकृतियों से आर्तव सौर मासों का नामकरण नहीं किया। और न ही सौर नाक्षत्र राशि संक्रान्तियों का नामकरण किया। वेदों में या वैदिक ब्राह्मणों में कहीं भी **उत्तरनाभि** को कर्क संपात नहीं कहा गया है। इसलिए वेदानुकूल ही यहाँ उत्तरनाभि तदनुरूप पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में उत्तर नाभि

१. निघण्टु १७/२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर चमक रहे सूर्य की सीधी किरणों के सापेक्ष उत्तरी गोलार्ध के उत्तर शीर्ष फलक पर उत्तरवृत्त और उत्तर रेखा को कल्पित किया गया है। इस प्रकार वेदों की इस **उत्तरनाभि** द्वारा यह तथ्य सदैव के लिए स्थिर कर दिया गया है।

इस उत्तरनाभि से सूर्य की उत्तर गति समाप्त होकर दक्षिण गति प्रारम्भ हो जाती है। इसलिए यह उत्तरनाभि, शुक्रमास और उत्तरायण की समाप्ति के साथ दक्षिणायन और शुचिमास की आरम्भक भी है। शुचिमास के प्रथम दिन से ही सूर्य की शनैः-शनैः दक्षिण गति के साथ शुक्रमास के अंतिम दिन सर्वाधिक बढ़ा हुआ दिन शुचिमास के प्रथम दिन से ही थोड़ा-थोड़ा घटने लगता है। और यह दिन का घटा भाग रात्रि में जुड़ता जाता है। इस प्रकार जो शुक्रमास में बढ़ता हुआ दिन अन्तिम दिवस शिखर पर पहुँचा था। वह उसी मात्रा में शुचिमास में लगभग उतना-उतना ही क्रमशः घटता है। इस प्रकार यह शुचिमास सूर्य के तापक्रम में क्रमशः उतार के बाद भी शुक्र मास से कम नहीं होता इसलिए यह शुक्र मास और शुचि मास दोनों ग्रीष्म ऋतु के महीने हैं।

चूँकि गर्मी के शिखर पर पहुँचने से ही सागर का पानी वाष्पित होकर मानसून में परिणत होता है, और आग से तपती धरती पर बरसता है। इसलिए इस शुचिमास में ही धरती के तप रहे भागों पर मानसून आयेगी और बरसेगी, इस अपेक्षा के साथ वैदिक ऋषियों ने इस मास का नाम **शुचिमास** रखा है।

शुचिर्-पूतीभावे– धातु से शुचि शब्द बना है अर्थात् शुचिमास का अर्थ है पवित्रता का महीना। सूर्य के ताप से पृथ्वी के जलते भू-भागों पर सूर्य के ताप से ही उठी मानसून की यह पहली वर्षा आकाश में फैली धूल को धरती में मिलाकर आकाश को स्वच्छ कर देती है पवित्र कर देती है। साथ ही धरती के उन भू-भागों की आग को बुझा कर उनकी प्यास को भी पानी देखर पवित्र करती है। इसलिए ग्रीष्म ऋतु का यह दूसरा माह, जिसमें वर्षा संयुक्त रहती है, वर्षा को लिए हुए रहता है। इसलिए यह शुचिमास कहलाता है। वर्ष के मुख्य तीन ऋतुओं गर्मी, वर्षा और हेमन्त के क्रम में यह शुचिमास वर्षा ऋतु में परिगणित होता है और छः ऋतुओं की व्यवस्था में ग्रीष्म ऋतु में परिगणित होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३-वर्षा ऋतु

चूँकि शुचिमास में उत्तरी गोलार्धीय सागर के ऊपर सूर्य का ताप शुक्रमास से भी तेज होता है। इसलिए इस ताप से उठने वाली वृहद् मानसून उत्तरी गोलार्ध के मैदानी इलाकों में अग्रिम दो मासों में भारी वर्षा करते हैं। इसलिए इस शुचिमास से लगे हुए आगे के दो मास मुख्य वर्षा ऋतु के महीने होते हैं। जिनका यजुर्वेद में इस प्रकार वर्णन है।

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्ताम् आप ओषधयः कल्पन्ताम् अग्नयः पृथङ्मम ज्येष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसो द्यावापृथिवी इमे वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविसन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्।।[1]

हिन्दी अर्थ– प्रतिदिन परिवर्तित हो रही ऋतु परिवर्तनकारी ऊष्णता में जो रहस्य है, हे धरित्रि! वह तुम हो!

वर्षाऋतु के अंगभूत अवयव नभमास और नभस्यमास इन द्यावा और पृथ्वी की रहस्यमयी गति में परिवर्तित हो रही ऊष्णता के द्वारा इस ऋतु को सम्पादित करें। हे द्यावापृथिवी! आप ऋतु अनुकूल ही वर्षा, और औषधियों-फसलों को सम्पादित करें।

समान व्रत और कर्म हैं जिनके, ऐसी प्रतिदिन अलग-अलग ऊष्णता की संपादक, ये ऋतु नियामक अग्नियाँ, कृषिकर्म आदि सत्कर्म में लगे हमारे उत्कर्ष के लिए हों।

द्यावापृथिवी-निर्मित परिवर्तन सातत्य में संलग्न ये अग्नियाँ, सब प्रकार से ऋतु अनुकूल संपादन करें। जिस प्रकार इंद्रियाँ आत्मा इंद्र के अनुकूल रहती हैं, उसी प्रकार पृथ्वी देवता द्वारा संपादित ये अग्नियाँ, अपने ध्रुव निश्चित आर्तव स्वरूप में स्थित हों।

मीमांसा–वेद में प्रकृति प्रकोप शांति के लिए और ऋतुओं को स्वस्वरूप में व्यवस्थित करने के लिए द्यावापृथिवी से यह वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में की गयी प्रार्थना है। नभ का अर्थ होता है आकाश। जब आकाश

---

१. यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता १४/१५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बादलों से भरा रहता है, प्यासी धरती के सारे प्राणी पानी के लिए आकाश की ओर आकर्षित रहते हैं। और तदनुरूप आकाशीय वर्षा उन्हें जल से आप्लावित करती रहती है, तब जन-सामान्य का आकर्षण नभ की ओर होने के कारण इसे नभमास कहते हैं। नभ शब्द का षष्ठी विभक्ति का रूप नभस्य होता है। स्पष्ट है कि, आकाश का ही यह दूसरा महीना है। वर्षा से होने वाली फसलें नभमास में उगकर नभस्यमास में अपने पूर्ण रूप में खिल उठती हैं। उस समय इन्हें पानी की परम आवश्यकता रहती है, तदनुरूप ही इस मास में वर्षा अपने जल से इनको पूर्णता प्रदान करती है। इस प्रकार यह नभस्यमास नभमास में, उगी फसलों का जीवन दाता होकर आता है। यदि इस मास में वर्षा न हो तो वर्षा ऋतु के प्रथम मास में उगी फसलें नष्ट हो जायें। इसीलिए यह वेद की प्रार्थना वर्षा ऋतु को समर्पित है।

४-शरद ऋतु

शुचिमास से आरम्भ से बड़े दिनों के शिखर पर तप रहा सूर्य शनैः-शनैः दक्षिण गति करता हुआ उसी क्रम से दिन का थोड़ा-थोड़ा अंश घट कर रात्रि में जुड़ता हुआ शुचिमास, नभमास और नभस्यमास इन तीन महीनों में उत्तरनाभि से दक्षिणनाभि की ओर गति करती हुई पृथ्वी संवत्सर के मध्य विषुव नाभि पर पहुँचती है। जहाँ पहुँचने से सम्पूर्ण पृथ्वी पर रात-दिन बराबर हो जाते हैं। विषुव का अर्थ ही होता है मध्य, उत्तर नाभि और दक्षिण नाभि का मध्य बिन्दु ही है **विषुव नाभि**। इस नाभि पर पहुँचते-पहुँचते वर्षा घटने लगती है, आकाश बादलों से मुक्त होने लगता है, फसलें रसवती हो जाती हैं, और इस विषुव दिवस से प्रणियों को सम शीतोष्ण का सुखद अनुभव कराने वाली शरद ऋतु का आगमन होता है।

यह समान दिन-रात वाला विषुव दिवस संवत्सर का मध्य होता है। उत्तरी गोलार्ध में इसी विषुव दिवस से शरद ऋतु का आरम्भ होने के कारण इसे उत्तरी गोलार्ध के निवासी **शारदीय विषुव** कहते हैं। पृथ्वी के दक्षिणी गोलार्ध में ऋतुओं का क्रम उत्तरी गोलार्ध के ऋतुओं के क्रम का ठीक उल्टा चलता है। अर्थात् जो विषुव उत्तरी गोलार्ध में शारदीय विषुव है, ठीक वही विषुव दक्षिणी गोलार्ध में वासंतिक विषुव है। इसी प्रकार उत्तरी गोलार्ध में जब ग्रीष्म ऋतु शिखर पर होती है तो दक्षिणी गोलार्ध में उस समय हेमन्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऋतु शीर्ष पर होती है। लेकिन दोनों ही विषुवों पर रात-दिन बराबर होने से सम्पूर्ण पृथ्वी पर विषुव दिवस पर सम शीतोष्ण की सुखद अवस्था रहती है। इसलिए दोनों ही विषुव वैदिक काल में महोत्सव के रूप में मनाये जाते थे। वर्तमान चाँन्द्र मासीय व्यवस्था में उन्हीं विषुवों के स्थान पर क्रमशः होली और दीवाली महोत्सव मनाया जाता है। जो विषुव दिवस के कभी ५-६ दिन पहले और कभी १५-२० दिन बाद आता है।

जिस प्रकार संवत्सरात्मक इस महासुपर्ण का आदिविषुव, अर्थात् उत्तरी गोलार्ध का वासंतिक विषुव शिर है उसी प्रकार इस महासुपर्ण रूप संवत्सर का मध्य विषुव, अर्थात् उत्तरी गोलार्ध का शारदीय विषुव पुच्छ है। जैसा कि श्रुति कहती है—"**शरत् पुच्छम् संवत्सरस्य**[१]"

इस शरद ऋतु का यजुर्वेद के (मा. सं.) में वर्णन इस प्रकार है—

इषश्चोर्जश्च शारदावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्ताम् आप ओषधयः कल्पन्ताम् अग्नयः पृथङ्मम ज्येष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसो द्यावापृथिवी इमे शारदावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविसन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्।।[२]

हिन्दी अर्थ—प्रतिदिन परिवर्तित हो रही ऋतु परिवर्तनकारी ऊष्णता में जो रहस्य है, हे धरित्रि! वह तुम हो।

शरद ऋतु के अंगभूत अवयव इषमास और ऊर्जमास इन सूर्य और पृथ्वी की रहस्यमय गति में प्रतिदिन परिवर्तित हो रही ऊष्णता के द्वारा इस ऋतु को सम्पादित करें। हे द्यावापृथिवी! आप ऋतु अनुकूल ही वर्षा और औषधियों-फसलों को सम्पादित करें।

समान व्रत और कर्म हैं जिनके, ऐसी प्रतिदिन अलग-अलग ऊष्णता की संपादक ये ऋतु नियामक अग्नियाँ, कृषिकर्म आदि सत्कर्म में लगे हमारे उत्कर्ष के लिए हों।

द्यावापृथिवी निर्मित परिवर्तन सातत्य में संलग्न ये अग्नियाँ सब प्रकार से ऋतु अनुकूल सम्पादन करें। जिस प्रकार इन्द्रियाँ आत्मा इन्द्र के अनुकूल रहती हैं, उसी प्रकार पृथ्वी देवता द्वारा संपादित ये अग्नियाँ अपने ध्रुव निश्चित आर्तव स्वरूप में स्थित हों।

---

१. तैतरीय ब्रा.३/११/१०/३। २. यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता १४/१६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वेद में प्रकृति-प्रकोप-शांति के लिए और ऋतुओं को स्वस्वरूप में व्यवस्थित करने के लिए द्यावापृथिवी से यह शरद ऋतु के प्रारम्भ में की जाने वाली प्रार्थना है।

इस संवत्सर के मध्य से प्राप्त शरद ऋतु में, वर्षा ऋतु के व्यतीत होने के कारण सम-शीतोष्ण प्रकृति में स्वच्छता के साथ-साथ जल से भरे तालाबों में कमल के फूल खिल उठते है। ईख की फसल से सम्पन्न उत्तरी गोलार्ध की प्रकृति धनधान्य से परिपूर्ण हो जाती है। जैसा कि श्रुति कहती है—

''शरदि ह खलु वै भूयिष्ठाः ओषधय पच्यन्ते।''[१]

निश्चय ही शरद में पर्याप्त मात्रा में फसलें पकती हैं।

मीमांसा– वर्षा ऋतु में तैयार हुई फसलें शरद ऋतु के प्रथम मास में पकती हैं, ईख भी इसी मास में रस से पूरित होती है। इसीलिए वेदों में इस महीने का नाम इषमास है। जिस प्रकार वासन्तिक (रबी की) फसलें मधुमास में पकती हैं, उसी प्रकार शारदीय (खरीफ की) फसलें इस शरद ऋतु के इषमास में पकती हैं। मधु और इष दोनों का अर्थ मीठा होता है। उधर मधुमास में मधूक महुआ पुष्प का रस मिलता है, इसलिए वह मधुमास होता है। इधर इषमास में ईख का रस मिलता है, इसलिए यह इषमास है।

''शरदि हि बर्हिष्ठाः ओषधयो भवन्ति''[२]

शरद में ही श्रेष्ठ फसलें, औषधियाँ होती हैं।

मीमांसा–शरद ऋतु का दूसरा महीना उर्जमास होता है, इषमास में रस सम्पन्न हो पकी फसलें उर्जमास में घर लायी जाती हैं। प्राणियों को रसमयी उर्जा प्राप्त होती है। इसीलिए वेदों में इसे उर्जमास कहा गया है। साहित्यिकों ने भी इषमास में पड़ने वाली चाँन्द्र पूर्णिमा को शारदीय पूर्णिमा कहा है। धार्मिक परम्परा में भी शरद पूर्णिमा के दिन, रात्रि में खीर पकाकर धवल चाँदनी से परिपूर्ण खुले आकाश में रखने से उसमें अमृत की वर्षा हुई मानकर खाने का विधान है। वर्तमान में इषमास में आश्विन (कुवार) मास की पूर्णिमा पड़ती है। इसलिए उसे ही शरद पूर्णिमा कहते हैं। जब तक कुवार पूर्णिमा इषमास में पड़ेगी तभी तक वह शरद पूर्णिमा कहलायेगी।

---

१. जैमिनी उपनिषद१/३५/५। २. कौषीतकी ब्रा.३/४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अयन गति के कारण इस स्थिति में परिवर्तन होने पर जो पूर्णिमा इषमास में पड़ेगी वही शरद पूर्णिमा कहलायेगी। इस प्रकार लोग शरद ऋतु में प्राकृतिक सुख प्राप्त करते हैं। शरद में सारी ही प्रकृति खिले कमलों के साथ खिल उठती है। तभी ऋषि के निर्मल अन्तःरण में शरद ऋतु सम्बन्धी वेद प्रकाश होता है, और मुँह से यह गान निकलता है—

"तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।"[१]

उन देव-द्योतित होने के इच्छुक विद्वानों का हित-संपादक तेजोमय ज्ञाननेत्र रूप सूर्य, पूर्व से ही उदित होता है। उस ज्ञान से सम्पन्न हम लोग सौ शरद के आवर्तन पर्यन्त, अर्थात् सौ संवत्सर तक जीवन प्राप्त करें। इसी प्रकार सौ शरद ऋतु पर्यन्त सुने, सौ शरद ऋतु पर्यन्त बोलें, और इन सौ शरद ऋतुओं में सौ प्रकार के धन धान्य से सम्पन्न रहें, कभी दीन न हों। पुनः सौ शरद बीतने के बाद भी उसी प्रकार आनन्द से रहें।

मीमांसा—वर्तमान में भी शारदीय विषुव दिवस के स्थान नर मनायी जाने वाली दीपावली के दिन इस मंत्र से ही लक्ष्मी-पूजन की परम्परा है। व्यापारी समुदाय इसी दिन अपने बहीखाते नूतन करता है। उसपर स्वस्तिक का चिह्न बनाता है। यहीं से वह अपना वित्तीय वर्ष मनाता है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक काल में आदि विषुव से नववर्ष आरम्भ और मध्य विषुव से वित्तीय वर्ष का आरम्भ होता था। वेदों के प्रति अत्यन्त श्रद्धा के कारण भारतीय जनसमुदाय वर्तमान में चाँन्द्र मास की प्रमुखता होने पर भी विषुव दिवस का सम्यक् ज्ञान न होने के कारण, उसी के स्थान पर कार्तिक अमावस्या को दीपावली मनाता आ रहा है।

५-हेमन्त ऋतु

शारदीय विषुव को सम्पूर्ण पृथ्वी पर रात-दिन बराबर होने के बाद, दक्षिण नाभि की ओर गति करती पृथ्वी के कारण उत्तरी गोलार्ध में इस विषुव दिवस के दूसरे दिन से ही दिन की अपेक्षा रात बड़ी होने लगती है।

---

१. यजुर्वेद मा.सं.३६/२४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और उसी क्रम से उतना ही दिन छोटा। ६० दिनों तक प्रतिदिन रात्रि के बढ़ने और दिन के घटने के क्रम से इन दो महीनों बाद रात्रि की अपेक्षा दिन काफी छोटा हो जाता है, उत्तरी गोलार्ध की धरती पर सूर्य की किरणें तिरछी और छोटे दिन के कारण थोड़े समय तक ही पड़ती हैं। इसलिए स्वभाविक रूप से ठंड बढ़ती जाती है। रात्रि के समय लोग आग जलाकर साथ-साथ बैठने लगते हैं। इसीलिए इस ऋतु के प्रथम मास का नाम सहमास और द्वितीय मास का नाम सहस्यमास है। यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता में इस ऋतु का वर्णन इस प्रकार है—

''सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे। हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवाऽभिसंविशन्तु तया देवतयाऽठिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ।[१]

प्रतिदिन परिवर्तित हो रही ऋतु परिवर्तनकारी ऊष्णता में जो रहस्य है, हे धरित्रि! वह तुम हो।

हेमन्तऋतु के अंगभूत अवयव सहमास और सहस्यमास इन द्यावापृथिवी की रहस्यमयी गति में प्रतिदिन परिवर्तित हो रही ऊष्णता के द्वारा इस ऋतु को सम्पादित करें। हे द्यावापृथिवी! आप ऋतु अनुकूल ही वर्षा और औषधियों-फसलों को सम्पादित करें।

समान व्रत और कर्म हैं जिनके, ऐसी प्रतिदिन अलग-अलग ऊष्णता की संपादक ये ऋतु नियामक अग्नियाँ, कृषिकर्म आदि सत्कर्म में लगे हमारे उत्कर्ष के लिए हों।

द्यावापृथिवी निर्मित परिवर्तन सातत्य में संलग्न ये अग्नियाँ, सब प्रकार से ऋतु अनुकूल सम्पादन करें। जिस प्रकार इन्द्रियाँ आत्मा इन्द्र के अनुकूल रहती हैं, उसी प्रकार पृथ्वी देवता द्वारा संपादित ये अग्नियाँ अपने ध्रुव-निश्चित आर्तव स्वरूप में स्थित हों।

वेद में प्रकृति-प्रकोप-शांति के लिए, और ऋतुओं को स्वस्वरूप में व्यवस्थित करने के लिए, द्यावापृथिवी से हेमन्त ऋतु के प्रारम्भ में की जाने वाली यह प्रार्थना है।

---

१. यजुर्वेद मा.सं.१४/२७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मीमांसा—यहाँ इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि, अपनी धुरी पर २३ अंश २८ कला झुकी नाचती हुई, सूर्य की परिक्रमा में आगे बढ़ती हुई पृथ्वी, प्रतिदिन परिक्रमण गति में अनुप्राप्त उत्तरी गोलार्ध में दिवस काल के च्युत अंश को रात्रि काल में जोड़ती हुई, क्रम से दिवस की अपेक्षा रात्रि को बढ़ाती हुई, प्रति ३० अंश में एक-एक माह को पूरा करती हुई, इस ऋतु के प्रथम सहमास जो शारदीय विषुव से तीसरा मास है के अंतिम समाप्ति दिवस पर ९० अंश पूर्ण कर दक्षिण नाभि पर पहुँच जाती है, अर्थात् सूर्य आकाश में दक्षिण गति के अंतिम बिंदु **दक्षिणनाभि** पर दिखाई देते हैं। उत्तरी गोलार्ध में यह सबसे छोटा दिन और सबसे बड़ी रात्रि होती है। पृथ्वी के उत्तरी फलक पर स्थित स्थलों में इस दिन लगभग १० घंटे का दिन और १४ घंटे की रात्रि होती है। सहमास का यह अंतिम ३०वाँ दिनांक होता है। अंग्रेजी तारीखों में इस दिन प्राय: २१ दिसम्बर की तारीख होती है। इस **दक्षिणनाभि** पर पहुँचने के साथ ही पृथ्वी की परिक्रमा के आलोक में सूर्य की दक्षिण गति समाप्त हो जाती है, और इसी **दक्षिणनाभि** से सूर्य की उत्तर गति प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार सहमास की समाप्ति के दिन दक्षिणायन समाप्त हो जाता है। और सहस्य मास के प्रथम दिन से ही, उत्तरायण प्रारम्भ हो जाता है। सहस्य मास के इस प्रथम दिनांक को अंग्रेजी महीनों की तारीख २२ दिसम्बर होती है। उत्तरायण प्रारम्भ होने के इस प्रथम दिन से ही, रात्रि का थोड़ा-थोड़ा घटना और वह घटा हुआ अंश ही दिन में जुड़कर दिन का थोड़ा-थोड़ा बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। यह रात्रि का घटना, और दिन का बढ़ना, पहले दिन लगभग ५ सेकेण्ड होता है। अर्थात् सहमास के ३०वें दिनांक को जब रात्रि १४ घंटे और दिन १० घंटे का होता है तो सहस्य मास के प्रथम दिनांक को रात्रि १४ घंटे से ५ सेकेण्ड कम हो जाती है और यही ५ सेकेण्ड दिन में जुड़कर दिन १० घंटे ५ सेकेण्ड का हो जाता है। इस प्रकार यद्यपि इस दिन से दिन का बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। फिर भी वह रात्रि की अपेक्षा बहुत छोटा होता है। इस प्रकार सहमास दिन घटने के क्रम में महीने में सबसे छोटे-छोटे ३० दिनों वाला होता है। उसी प्रकार सहस्यमास दिन बढ़ने के क्रम में सबसे छोटे-छोटे ३० दिनों वाला होता है। उत्तरी गोलार्ध में इन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दोनों महीनों के ६० दिन वर्ष के सबसे छोटे दिनों वाले और सबसे बड़ी रात्रि वाले होते हैं। स्वाभाविक रूप से धरती के उत्तरी गोलार्ध में दिन बहुत छोटा होने के कारण और सूर्य की किरणें तिरछी पड़ने के कारण, यहाँ की धरती पर सूर्य का ताप अत्यन्त कम हो जाने से ठंड सर्वाधिक बढ़ जाती है। पहाड़ी क्षेत्रों में हिम की वर्षा होती है। निरुक्तकार कहते हैं—**"हेमन्तो हिमवान् हिमं पुनर्हन्तेर्वा हिनोतेर्वा"** अर्थात् हिम पड़ने से यह हेमन्त है। यह हिम बरस कर फसलों को मार डालता है, इसलिए इसे हिम कहते हैं। और इस हिम से युक्त इन दो महीनों को हेमन्त ऋतु का दो भाग कहा जाता है। अर्थात् ये दो महीने ही हेमन्त ऋतु के मुख्य दो महीने हैं।

६-शिशिर ऋतु

हेमन्त ऋतु के दूसरे महीने सहस्यमास के प्रारम्भ से ही यद्यपि दिन का थोड़ा-थोड़ा बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है, लेकिन वह इतना कम होता है कि, दिन के बढ़ने पर भी सूर्य के ताप बढ़ने का किञ्चित् मात्र भी अनुभव नहीं होता है। अपितु यह माह सर्वाधिक ठंडा होता है। इस सहस्यमास में दिन के बढ़ने की मात्रा जो सेकेण्डों में होती है वहीं इस सहस्यमास के बीतने के बाद दिन के बढ़ने की मात्रा प्रतिदिन एक मिनट के लगभग हो जाती है जिससे सूर्य के ताप बढ़ने का भी अनुभव होने लगता है। इसीलिए इस मास का नाम वेदों में तपमास है। इस मास के प्रथम दिनांक से शिशिर ऋतु का प्रारम्भ होता है। यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता में इसका वर्णन प्रकार है–

"तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे शैशिरावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवे सीदतम्।[१]**"**

प्रतिदिन परिवर्तित हो रही ऋतु परिवर्तनकारी ऊष्णता में जो रहस्य है, हे धरित्रि! वह तुम हो। शिशिर ऋतु के अंगभूत अवयव तपमास और तपस्यमास इन सूर्य और पृथ्वी की रहस्यमय गति में प्रतिदिन परिवर्तित हो रही ऊष्णता के द्वारा इस ऋतु को सम्पादित करें। हे द्यावापृथिवी! आप ऋतु-अनुकूल ही वर्षा और औषधियों-फसलों को सम्पादित करें।

---

१. यजुर्वेद मा.सं. १५/५७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समान व्रत और कर्म हैं जिनके, ऐसी प्रतिदिन अलग अलग ऊष्णता की संपादक ये ऋतु नियामक अग्नियाँ कृषिकर्म आदि सत्कर्म में लगे हमारे उत्कर्ष के लिए हों।

द्यावापृथिवी-निर्मित परिवर्तन-सातत्य में संलग्न ये अग्नियाँ, सब प्रकार से ऋतु अनुकूल सम्पादन करें। जिस प्रकार इन्द्रियाँ आत्मा इन्द्र के अनुकूल रहती हैं, उसी प्रकार पृथ्वी देवता द्वारा संपादित ये अग्नियाँ अपने ध्रुव निश्चित आर्तव स्वरूप में स्थित हों।

वेद में प्रकृति प्रकोप शांति के लिए, और ऋतुओं को स्वस्वरूप में व्यवस्थित करने के लिए, द्यावापृथिवी से शिशिर ऋतु के प्रारम्भ में की जाने वाली यह प्रार्थना है।

"तप-दाहे"[१] धातु से **"सर्वधातभ्योऽसुन्"**[२]

इस सूत्र से असुन् प्रत्यय करने से तप शब्द बनता है। **तापयतीति तपः** अर्थात् जो ठंडी से सिकुड़े त्रस्त लोगों में सूर्य के ताप का अनुभव कराता है, वह तपमास है। और जब ताप का बढ़ना साफ एवं स्पष्ट हो जाता है तो उसे तपस्यमास कहते हैं। जैसा कि श्रुति कहती है—

"एतौ एव शैशिरौ मासौ स यदेतयोर्बलिष्ठं श्यायति तेनौ हेतौ तपश्च तपस्यश्च।"[३]

ये दोनों ही शिशिर ऋतु के महीने हैं। वह जो दिन इन दोनों में क्रमशः बलपूर्वक तीव्रता से बढ़ता हुआ तेज होता है। इसी कारण से इन दोनों महीनों का नाम तप और तपस्य है।

मीमांसा—सहस्यमास के प्रारम्भ में जो दिन के बढ़ने का क्रम लगभग ५ सेकेण्ड रहता है वह क्रमशः अधिक होता हुआ सहस्य मास की समाप्ति और तपमास के प्रारम्भ में एक मिनट प्रतिदिन के लगभग होता है। तदुपरान्त दिन के बढ़ने की मात्रा प्रतिदिन कुछ अधिक होती हुई तपस्यमास के अंतिम दिन तक प्रतिदिन २ मिनट हो जाती है। और तपस्यमास के अंतिम दिन विषुव दिवस अर्थात् समान मान वाले रात दिन से युक्त दिवस पर पहुँच जाती है।

---

१. पा.धा.चु.२४२। २. उ.सू.४/१८९। ३. शतपथ ब्रा.४/३/१/१९।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चतुर्थ अध्याय

वेदों में ऋतुओं का विविध विभाग

१- द्वादश ऋतु

वेदों में स्थूल और सूक्ष्म दृष्टि से ऋतुओं के विविध विभाग किये गये दिखाई पड़ते हैं। प्रथमतया तो जैसा वेदों में मासों के नाम वर्णित हैं, वह नाम ही ऋतुपरक हैं। इस प्रकार संवत्सर के १२ महीने ही १२ ऋतु हैं। उसके बाद छः ऋतुओं के दो-दो महीने उस ऋतु के विभाग रूप में ही वर्णित हैं जिनका पूर्ण वर्णन वेद मंत्रों के अनुसार किया गया है। इन छः ऋतुओं के अतिरिक्त भी वेदों में ऋतुओं के विविध विभाजन हैं जो इस प्रकार हैं—

२- द्विविध ऋतु

इन ऋतुओं के अतिस्थूल दृष्टि से दो विभाग किये गये हैं— १. उत्तरावर्त, २. दक्षिणावर्त ।

१. उत्तरावर्त- उत्तरावर्त में पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में छः माह की ग्रीष्म ऋतु और दक्षिणी गोलार्ध में छः माह की शीत ऋतु होती है।

२. दक्षिणावर्त- दक्षिणावर्त में पृथ्वी के दक्षिणी गोलार्ध में छः माह की ग्रीष्म ऋतु और उत्तरी गोलार्ध में छः माह की शीत ऋतु होती है।

मीमांसा- इस प्रकार पृथ्वी के इन दोनों गोलार्धों में क्रमशः पूर्णतया विपरीत ऋतुएँ होती हैं। यहाँ उत्तरी गोलार्ध में प्राणियों की आबादी अधिक होने के कारण उत्तरी गोलार्ध के आरम्भक विषुव से ही नववर्ष का आरम्भ माना गया है। इसे **नवंवर्ष विषुव महोत्सव** के रूप में वैदिक काल में मनाया जाता था। यद्यपि वेदों में दोनों ही गोलार्धों को उन-उन गोलार्धों के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राणियों के सम्मान की दृष्टि से समान रूप से महत्व प्रदान किया गया है। इसलिए उत्तरी गोलार्ध के आरम्भक विषुव को जहाँ नववर्ष का आरम्भक माना गया है। वहीं दक्षिणी गोलार्ध के आरम्भक विषुव को **मध्यविषुव महोत्सव** और **वित्तवर्ष** के रूप में मानाया जाता था। विषुव के बाद जिस गोलार्ध में रात्रि की अपेक्षा दिन बड़े होने लगते हैं, उस गोलार्ध में **ग्रीष्म ऋतु** होती है। उसके ठीक विपरीत गोलार्ध में जिसमें दिन की अपेक्षा रात्रियाँ बड़ी होती हैं, वहाँ शीत ऋतु होती है। इस प्रकार दो ऋतुएँ क्रमशः ग्रीष्म ऋतु और शीत ऋतु, दोनों गोलार्धों में एक दूसरे के विपरीत चलती रहती हैं। इस प्रकार वर्ष के आरम्भ के क्रम से दोनों गोलार्धों में ऋतु का विभाजन इस प्रकार होगा।

१. उत्तरी गोलार्ध- १ ग्रीष्म ऋतु २ शीत ऋतु

२. दक्षिणी गोलार्ध- १ शीत ऋतु २ ग्रीष्म ऋतु

इस प्रकार ये दो ही ऋतुएँ क्रमशः **ग्रीष्म ऋतु** और **शीत ऋतु** के रूप में चलती रहती हैं।

पुनः इन ऋतुओं का तीन विभाग भी प्राप्त होता है जैसा कि यह शतपथ श्रुति कहती है—

३- त्रिविध ऋतु

"त्रयो वा ऋतवः संवत्सरस्य। संवत्सरसंमिता वै गर्भाः प्रजायन्ते।[१]" अथवा संवत्सर की तीन ऋतुएँ होती हैं। निश्चय ही संवत्सर सम्मित ही अर्थात् ऋतु अनुकूल ही गर्भ उत्पन्न होते हैं।

त्र्यृतुः संवत्सरो ग्रीष्मो वर्षा हेमन्त इति।।[२]

तीन ऋतुओं का संवत्सर होता है क्रमशः ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त

संवत्सरः संवसन्तेऽस्मिन्भूतानि।।[३]

इसमें सारे प्राणी बसते हैं इसीलिए इसे संवत्सर कहते हैं।

"ऋतुः चत्वारोमासाः"[४]

चार-चार महीनों की ऋतु होती है, अथवा एक ऋतु में चार मास होते हैं।

१. शतपथ ब्रा.११/५/४/११। २. निरुक्त ४/२७।
३. निरुक्त ४/२ ४. कौषीतकी ११/७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस विभाजन में ऋतुओं और उनके महीनों का क्रम इस प्रकार है—

१. ग्रीष्म ऋतु– ग्रीष्मः ग्रस्यन्ते अस्मिन् रसाः।[१]

यह ग्रीष्म इसलिए है क्योंकि यह रसों को ग्रस लेता है। तीन ऋतुओं के क्रम में हेमन्त ऋतु के बाद तपस्यमास, मधुमास, माधवमास और शुक्रमास इन चार महीनों की ग्रीष्म ऋतु होती है। यहाँ ऋतुओं के मासों का परिगणन छः ऋतुओं के परिगणन से बिल्कुल अलग है। छः ऋतुओं के क्रम में शुक्रमास और शुचिमास ग्रीष्म ऋतु के महीने होते हैं, जब कि चार महीनों के ऋतुओं के क्रम में शुचिमास वर्षा ऋतु में माना जाता है। और ग्रीष्म ऋतु में वसंत ऋतु के दोनों महीनों के साथ शिशिर ऋतु का भी दूसरा तपस्य मास मिल जाता है। इस प्रकार इन चार महीनों की **ग्रीष्म ऋतु** होती है।

२. वर्षा ऋतु– वर्षा वर्षत्यासु पर्जन्यः।[२]

इसे वर्षा इसलिए कहते हैं, क्योंकि बादल इसमें बरसते हैं। तीन ऋतुओं के क्रम में शुचिमास, नभमास, नभस्यमास, और इषमास इन चार महीनों की वर्षा ऋतु होती है। बहुत से लोग वर्षा से ही वर्ष का आरम्भ मानते हैं। उनकी दृष्टी में वर्ष की प्रथम ऋतु वर्षा होती है। इस वर्षा ऋतु में छः ऋतुओं के क्रम की ग्रीष्म ऋतु का अंतिम शुचिमास और शरद ऋतु का प्रथम इषमास मिल जाने से चार महीने की यह **वर्षा ऋतु** होती है।

३. हेमन्त ऋतु-हेमन्तो हिमवान्। हिमं पुनर्हन्तेर्वा हिनोतेर्वा।[३]

हिम वाला होने से इसे हेमन्त कहते हैं, पुनः हिम पड़कर वनस्पतियों और औषधियों को मार डालता है, इसीलिए इसे हिम कहते हैं। हन् हिंसागत्योः धातु से हिम शब्द बनता है, **"यत् स्ववृष्ट्या वनस्पतीन् औषधीञ्श्च हन्ति तत् हिमम्"** जो स्वयं बरस कर वनस्पतियों और औषधियों को मार डालता है, वह हिम है। इस प्रकार के हिम से जो युक्त है वह हेमन्त है। इस क्रम में वर्षा ऋतु के बाद उर्जमास, सहमास, सहस्यमास और तपमास इन चार महीनों की हेमन्त ऋतु होती है। हेमन्त को ही शीत ऋतु भी कहते हैं, इस हेमन्त में शरद ऋतु का अंतिम उर्जमास और शिशिर ऋतु का प्रथम तपमास जोड़कर चार महीनों का हेमन्त होता है।

---

१. निरुक्त ४/२७। २. निरुक्त ४/२७। ३. निरुक्त ४/२७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४. ऋग्वेदीय पञ्चविध ऋतु

ऋग्वेद में ऋतुओं के छः विभागों को दिखाते हुए भी पाँच विभागों को ही सर्वाधिक महत्व दिया गया है। जो ऋग्वेद के इस मंत्र में स्पष्ट है—

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम्।।[1]

मन्त्रस्यास्य दीर्घतमा औचथ्यः ऋषिः, विश्वेदेवादेवताः, जगती छन्दः।

हिन्दी व्याख्या–संवत्सर आत्मा काल के पाँव के समान उसके पञ्चपादरूप पाँच ऋतुएँ हैं। इन पञ्चपाद रूप ऋतुओं के द्वारा ही यह संवत्सर काल-चक्र आवर्तित होता रहता है। सबका उत्पादन करके, सबको वसाते हुए, सबका पालन करने के कारण, यह संवंत्सर सबका पितर है। इस संवत्सर के १२ महीने ही इनकी १२ आकृतियाँ हैं। इस सम्पूर्ण पृथ्वी रूपी पुरी में, सूर्य अपने सम्मुख भाग में दिन और उसके पर आधे भाग में रात्रि के द्वारा यह शासन करता है।

इसी संवत्सर काल-चक्र को अन्य काल विद्, विचक्षण-निपुण सूक्ष्म विज्ञान-वेत्ता, इसे सप्तदिवसात्मक सप्तचक्र में निरन्तर गतिमान, छः ऋतुओं वाले षड् अराओं से युक्त कहते हैं। अथवा सप्तवर्णों से युक्त सूर्य की किरणों से युक्त सूर्य विम्ब चक्र के समान प्रतीत होता है, उस कालात्मा सूर्य में अरों के समान यह छः ऋतुएँ अर्पित-सी हैं।

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः।।[2]

तस्मिन पञ्चारे परिवर्तमाने चक्रे– उस पञ्च ऋतु रूप पञ्च अरों में घूमने वाले चक्र में, **विश्वा भुवनानि आ तस्थुः**– सम्पूर्ण लोक अच्छी तरह स्थित हैं। **भूरिभारः तस्य अक्षः न तप्यते**– अपने अक्ष पर घूम रही, सूर्य की परिक्रमा कर रही इस पृथ्वी द्वारा निर्मित इस चक्र का अक्ष समग्र लोकों का विशाल भार वहन करता हुआ भी कभी तप्त नहीं होता है। **सनाभिः सनात् एव**– अनन्त काल से अपनी नाभि के साथ गति करते रहने पर भी, **न शीर्यते**– यह कभी क्षीण नहीं होता-कभी नहीं टूटता।

---

१. ऋग्वेद १/१६४/१२। २. ऋग्वेद १/१६४/१३।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मीमांसा– मूलतः दो-दो महीनों की ऋतुएँ हैं, इस प्रकार द्वादश महीने में छः ऋतुएँ होती हैं, किन्तु यहाँ इन दोनों मंत्रों में सर्वप्रथम 'पाँच ऋतुएँ' और 'द्वादश' महीने कहकर पाँच ऋतुओं को ही प्रमुखता दी गयी है। वेद में सामान्य जन कृषक को विस्, विट् और वैश्य कहा गया है। इस कृषक को सभी वेदों में **सप्तदश स्तोम** कहा गया है। और इस सप्तदश स्तोम की व्याख्या में बताया गया है, कि द्वादश महीने और पाँच ऋतुएँ मिलकर सप्तदश होते हैं। इन द्वादश महीनों और पाँच ऋतुओं में पूर्ण सावधान होकर ही कृषक अपनी कृषि को उन्नत बनाते हुए राष्ट्र का उत्कर्ष करता है, मानो उस कृषक के द्वारा इस राष्ट्रात्मा परमात्मा की यह सप्तदश स्तुति है। इसीलिए उसे **सप्तदश स्तोम** कहा गया है। इस सप्तदश स्तोम की ऐतरेय ब्राह्मण में इस प्रकार व्याख्या की गयी है—

''सप्तदशो वै प्रजापतिः। द्वादश मासाः पञ्चर्तवः हेमन्तशिशिरयोः समासेन। तावान् संवत्सरः। संवत्सरः प्रजापतिः। प्रजापत्यायतनाभिरेवाभी राध्नोति। य एवं वेद।[१]''

निश्चय ही सप्तदश ही प्रजापति है। द्वादश महीने और पाँच ऋतुएँ, हेमन्त-शिशिर के समास के द्वारा पाँच ऋतुएँ होती हैं, इस प्रकार द्वादश महीने और पाँच ऋतुएँ मिलकर सप्तदश हुए। उतना ही संवत्सर है। यह संवत्सर ही प्रजापति है। सबको अच्छी तरह वसाने के कारण ही वह संवत्सर है। ऐसा जो जानता है वही संवत्सर को जानता है।

मीमांसा– तीन ऋतुओं और छः ऋतुओं के क्रम में मुख्य हेमन्त ऋतु के दो माह, सहमास और सहस्यमास के बाद तथा मुख्य ग्रीष्म ऋतु के शुक्रमास और शुचिमास के पहले पड़ने वाले चार महीने क्रमशः तपमास, तपस्यमास, मधुमास, और माधवमास इन चार महीनों की दो ऋतुएँ की गयी हैं। इन दोनों ऋतुओं में प्रायः यह देखा जाता है, कि शिशिर ऋतु के प्रथम मास के २० दिन तीव्र ठंड बनी रहती है, शेष ४० दिनों में रात्रि में सामान्य ठंड होने पर भी दिन का वातावरण बहुत ही सुखद होता है। इसी प्रकार वसंत ऋतु के अंतिम मास माधवमास में वासन्तिक फसलें घर लाने में किसान प्रसन्न रहता है। किन्तु दिन में गर्मी बहुत तेज हो जाती है। केवल

१. ऐतरेय ब्रा.१/१६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रात में ही वसंत का अनुभव होता है। और वह भी माधवमास के पूरा होते-होते पूरी तरह समाप्त हो जाता है, और रात में भी गर्मी होने लगती है। ग्रीष्म ऋतु का **शुक्रमास,** जैसा कि नाम से स्पष्ट है, कि उसमें सूर्य की किरणें आग की तरह जलती हुई लगती हैं। और शुचिमास में किरणों के जलने में भी मानसून की वर्षा आने से राहत मिलती है।

निम्नलिखित श्रुतिओं से भी ऋग्वेदीय पाँच ऋतुओं की ही पुष्टि होती है।

"मुखं वा एतदऋतुनां यद्वसंतः"[1]

यह जो वसंत है, ऋतुओं का मुख है।

"अन्त ऋतुनाम हेमन्तः"[2]

यह जो हेमन्त है, ऋतुओं का अंत है।

मीमांसा– इस प्रकार इन श्रुतिओं में स्पष्ट किया गया है कि वसंत से ऋतुओं का आरंभ और हेमंत से ऋतुओं का अंत माना गया है। अब इन दोनों के बीच में शिशिर ऋतु ही बचती है, जिसका वसंत और हेमन्त में विलय होना है। जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया गया है कि, ऋतुओं का नाम उनके प्राकृतिक स्वभाव पर रखा गया है। हिम और शीत पड़ने से हेमन्त कहा जाता है। इसी प्रकार लोगों में आनन्द एवं सुख को बसाने के कारण वसंत कहा जाता है। सहमास और सहस्य मास दो हेमन्त ऋतु के मुख्य महीने हैं। जब कि परम्परा से यह तथ्य प्रचलित है कि, वसंत ४० दिन पूर्व से ही अपने आगमन की सूचना देता है। इस प्रकार शिशिर के ६० दिनों में से ४०दिन वसंत के निकालने के बाद शिशिर ऋतु के मात्र २० दिन ही शेष बचते हैं। निश्चित रूप से यह २० दिन ठंड से युक्त ही होते है। इसलिए इनका विलय हेमन्त ऋतु में कर देने से पाँच ऋतुएँ ही शेष रहती हैं, और इस प्रकार शीत के पतझड़ के बाद नव अंकुर नव किसलय के साथ विषुव से ४० दिन पूर्व से ही वसंत का आगमन हो जाता है। और उसके पूर्व के २० दिन हेमन्त में जुड़ जाने से शीत और पतझड़ के द्वारा ऋतुओं के अंत के रूप में हेमन्त होता है।

---

१. तैतरीय ब्रा. १/१/२/६-७ । २. शतपथ ब्रा. १/५/३/१३।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५-ऋग्वेद के कालचक्र ज्ञापक प्रथम मंडल के १६४ वें सूक्त के कुछ अन्य कालचक्र सम्बन्धी महत्वपूर्ण मंत्र

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेकोऽअश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधितस्थुः।।[१]

इस मंत्र की व्याख्या करते हुए आचार्य यास्क ने लिखा है— **"सप्त युञ्जन्ति रथमेकचारिणं, चक्रं चकतेर्वा चरतेर्वा क्रामतेर्वा। एको अश्वो वहति सप्तनामादित्यः। सप्तास्मै रश्मयो रसानाभिसन्नामयन्ति सप्तैनमृषयः स्तुवन्तीति वेदमपीतरन्नामैतस्मादेवाभिसन्नामात्।।**[२]**"**

एक चक्र वाले रथ में सात अश्व जुड़ते हैं। चक्र चक्राकार होने से, अथवा चलने से, अथवा घूमने से कहलाता है। इस अर्थ में सूर्य स्वयं चक्र हैं। एक चक्र से मतलब अकेले चलने से है, सूर्य आकाश में एक चारी हैं। इन अकेले चलने वाले सूर्य में सात रंगों की किरणें इस चक्र से जुड़ी हुई, चलती हुई प्रकाश उत्पन्न करती है। इस चक्र को एक ही अश्व सात नामों से लेकर चलाता है। यहाँ यह अश्व भी सूर्य ही है, यह सूर्य रूप अश्व सात दिनों के नाम से सप्त दिवसात्मक चक्र के रूप में चला रहा है।

आगे आचार्य यास्क लिखते हैं—**"संवत्सरप्रधान उत्तरोऽर्धर्चः।"** अर्थात् आगे मंत्र की आधी ऋचा संवत्सर प्रधान है, तीन नाभियों वाला यह संवत्सर काल चक्र कभी जीर्ण न होने वाला और कभी शिथिल न होने वाला है। जिसमें ये सारे भुवन स्थित हैं। इस चक्र की तीन नाभियाँ इस प्रकार हैं विषुव नाभि, उत्तर नाभि और दक्षिण नाभि, इन तीन नाभियों वाला संवत्सर कालचक्र न तो कभी जीर्ण होता है और न ही कभी शिथिल होता है।

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम।[३]

इस रथ पर जो सात प्रकार की किरणें उपस्थित हैं, वे भी सात दिन रात रूप सात चक्र बनाती हैं, जिन्हें सात दिनों के नाम वाले सात अश्व चलाते हैं। सात बहनें चारों तरफ से इसकी स्तुति करती हैं। सात प्रकार की

---

१. १/१६४/२। २. निरुक्त ४/४/२७। ३. १/१६४/३।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूर्य की किरणें ही सात बहनें हैं वे निरन्तर इस सूर्य रूपी चक्र के चारो तरफ से मानों इसकी स्तुति कर रही हैं। जहां वाणी अथवा इन किरणों के सात नाम छिपे हुए हैं।

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत एत्तानायां दश युक्ता वहन्ति।
सूर्यस्य चक्षु रजसैत्यावृतं तस्मिन्नर्पिता भुवनानि विश्वा।।[१]

सनेमि अजरं चक्रं वि वावृते– नेमी से युक्त कभी भी वृद्ध न होने वाला यह चक्र सदैव घूमता रहता है। **उत्तानायां दश युक्ताः वहन्ति-** अत्यन्त विस्तृत शून्य में उठी हुई इस पृथ्वी को दश दिशाओं रूप, दश अश्व इससे जुड़े हुए इसको वहन करते हैं। **सूर्यस्य चक्षुः रजसा आवृतं एति–** सूर्य का प्रकाश इस पृथ्वी की जलवायु से ढका हुआ इस तक आता है। **तस्मिन् विश्वा भुवनानि अर्पिता–** उस धरती की जलवायु में ही यह सम्पूर्ण लोक स्थित है।

मीमांसा– अपने अक्ष पर घूमती हुई और सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी की स्व अक्ष पर घूर्णन एवं सूर्य के परिक्रमण रूप गति से निर्मित पाँच अरों रूप पञ्च ऋतुओं में घूम रहे इस काल चक्र में ही सारे लोक रहते हैं। इन सारे लोकों का भार वहन कर घूमता हुआ भी इस आकाश रूप महाशून्य में गतिमान इस कालचक्र का अक्ष कभी न तो तप्त होता है और न ही क्षीण होता है। पृथ्वी के अक्ष रूपी नेमी से युक्त कभी भी जरा-जीर्ण अवस्था को न प्राप्त होने वाला सदैव अजर नित्य नूतन यह कालचक्र सदैव घूमता रहता है, इस धरती के ऊपर फैली हुई प्रकृति में दस दिशाओं रूप दस अश्व इसके साथ युक्त हुए, इसको चलाते हुए दिखते हैं। सूर्य का प्रकाश इस पृथ्वी की प्रकृति में विद्यमान जलवायु से आवृत होकर अर्थात् उसमें से छनकर ही पृथ्वी तक आता है। इस पृथ्वी की जलवायु से आवृत होकर आने वाले सूर्य के प्रकाश से निर्मित हो रहे रात्रि, दिन और ऋतुओं में ही ये सारे लोक स्थित हैं। अर्थात् उससे ही पृथ्वी के सम्पूर्ण प्राणी जीवन प्राप्त करते है।

यहाँ स्पष्ट रूप से आकाश रूपी महाशून्य अपने अक्ष पर घूमती हुई और सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी से निर्मित होने वाले चक्र को कभी

---

१. ऋग्वेद १/१६४/१४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जीवन न होने वाला नित्य बताते हुए सारे लोकों का आधार बताया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि सूर्य का प्रकाश पृथ्वी की जलवायु से स्व-आवृत होकर छन-छन कर ही धरती तक आता है, और जीवन दाता होता है। वर्तमान में वैज्ञानिक खोज से यह स्पष्ट हो गया है कि, ओजोन परत से छनकर आने वाली सूर्य की किरणें ही पृथ्वी के प्राणियों को जीवन देती हैं। ओजोन परत के अभाव में सूर्य की किरणें पृथ्वी के प्राणियों की विनाशक हो जायेंगी। वैज्ञानिकों की इस खोज से बहुत पहले ऋग्वेद के इस मंत्र में यह तथ्य स्वष्ट रूप से वर्णित है। वेद के गम्भीर विज्ञान के इन तथ्यों के आधार पर हम और गम्भीर गवेषणा कर सकते हैं। आवश्यकता है वैदिक विज्ञान पर गम्भीर गवेषणा की।

६- वैदिक महोत्सव एवं उनके वर्तमान में प्रचलित कुछ रूप

१ नववर्ष आरम्भक विषुव महोत्सव के स्थानीय वर्तमान में विविध महोत्सव—जब वैदिक आर्तव मासों का ज्ञान किन्हीं कारणों से नष्ट हो गया, और सभी व्यवहार में नाक्षत्र चाँन्द्र मासों का प्रयोग किया जाने लगा, जो अपनी अधिक मास और क्षय मास की वैदिक विशिष्ट परम्परा के कारण, नाक्षत्र सौर वर्ष में परिणत होते रहते हैं, इन्हीं चैत्रादि चाँन्द्र महीनों से ही सारी व्यवस्था चलने लगी तब लोगों ने धीरे-धीरे चैत्रादि महीनों को ही वैदिक मधुमास आदि आर्तव महीनों का पर्यायवाची मान लिया। इसी क्रम में वर्तमान में भी यह बात प्रचलित है कि वसंत अपने मुख्य मधुमास के प्रारम्भ होने के ४० दिन पूर्व ही प्रभावी हो जाता है। ऐसी स्थिति में शिशिर ऋतु के अंतिम ४० दिनों में वसंत प्रभावी होने के कारण ऋग्वैदिक काल से वर्तमान तक उन्हें वसंत ऋतु का ही भाग माना जाता है। इस प्रकार शिशिर के ४० दिन वसंत में मिल जाने के कारण केवल २० दिन ही शिशिर के शेष रहते हैं। इन २० दिनों में हेमन्त जैसी ठंड भी बनी रहती है, इसलिए ये २० दिन हेमन्त ऋतु में सम्मिलित कर देने से केवल पाँच ऋतुएँ ही होती हैं। ऋग्वेद में इन पाँच ऋतुओं को ही महत्व दिया गया है। मध्य काल से वर्तमान तक में वैदिक आर्तव महीनों का समुचित ज्ञान न होने के कारण, उनकी जगह नाक्षत्र चाँन्द्र मासों का ही प्रयोग किया जा रहा है। तदनुसार समान रात-दिन वाले **विषुव दिवस-सम अहोरात्र** अर्थात्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होरा के स्थान पर **होरी** और **होली** फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को मनायी जा रही है, और उसके ४० दिन पहले ही माघ शुक्ल पंचमी को वसंत पंचमी और सरस्वती पूजा के रूप में वैदिक मदनोत्सव मनाया जाता है।

मूलत: विषुव दिवस को ही वर्ष का समापन और नववर्ष का आरम्भ वेदों में माना गया है। उसी दिन **होरा** मनाया जाता था और संवत्सर की विदाई के रूप में **होलिका दाह** मध्य रात्रि में किया जाता था। और सवेरे नये वर्ष का उत्सव रंग-बिरंगे फूलों से खिली प्रकृति के अनुरूप रंगों का खेल **नववर्ष उल्लासमय रंगोत्सव** मनाया जाता था। मूलत: तपमास के २१वें दिनांक को वसंत का आगमन मानकर प्रकृति में आम्र मञ्जरियों के आगाज के साथ मानवीय प्रकृति में भी वैसा ही उल्लास होने से **मदनोत्सव** मनाया जाता था। जिसके स्थान पर वर्तमान में उसी के प्रतीक रूप में वसंत पंचमी को एरण्ड का वृक्ष गाड़कर मदनोत्सव भी मनाते हैं। यह उत्सव ४० दिनों तक चलता है। वर्ष की समाप्ति ४० दिन उसी स्थान पर होली लगाने और संवत्सर की समाप्ति पर चालीसवें दिन मध्य रात्रि में उसे जलाने की परम्परा अभी भी वही है।

चूँकि फाल्गुन की पूर्णिमा कई बार विषुव दिवस के पहले ही आ जाती है, ऐसी स्थिति में, विषुव दिवस से वर्ष के आरम्भ के वेदों के निर्णय से सामञ्जस्य न होने के कारण, मध्यकालीन ज्योतिषियों ने उस समय विषुव दिवस के समीप आने वाली **चैत्र शुक्ल प्रतिपदा** से नववर्ष का आरम्भ मानकर पंचांगों का निर्माण शुरू किया। तदनुसार ही वर्तमान पंचांग भी बन रहे हैं। इस चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नव दिन तक नवरात्र माना जाता है। इस प्रकार यह नवरात्र भी विषुव महोत्सव के स्थान पर ही मनाया जाता है। इस प्रकार विषुव दिवस की समीपता को ध्यान में रखकर ही वर्तमान में संवत्सर का समापन और आरम्भ दो तिथियों में क्रमश: मनाया जाता है जो इस प्रकार है—

१. फाल्गुन पूर्णिमा को संवत का उसी के अंतिम संस्कार के रूप में होलिका दाह। उसके ठीक दूसरे दिन चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को खिले विविध रंगों के फूलों से नूतन प्रकृति के उल्लास रूप रंगोत्सव व उसी रंगोत्सव की सायं नवसंवत्सर की कथा सुनाने की परम्परा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२. इस होलीकोत्सव के ठीक पन्द्रह दिन बाद पुनः चैत्र अमावस्या को वर्ष का समापन और चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नये संवत्सर का आरम्भ इस प्रकार से पन्द्रह दिन के अन्तराल से दो बार नववर्ष मनाने की परम्परा मूल रूप से विषुव दिवस की समीपता के दृष्टिगत है।

मीमांसा–तथ्य यह है कि वेदों का विषुव दिवस, अर्थात् सम अहोरात्र कालात्मक होरा उसी का नाम होरी और होली जो वैदिक महीनों के अंतिम मास (तपस्यमास) के अंतिम दिनांक की मध्य रात्रि को संवत के अंतिम संस्कार के रूप में जलायी जाती थी। उसी मध्य रात्रि के बाद से नवसंवत्सर का आगमन मानकर रंगोत्सव मनाया जाता था। उसी के स्थान पर यह होलिकोत्सव मनाया जाता है। किन्तु चान्द्र तिथियों से आर्तव वर्ष का पूर्ण सामन्जस्य असम्भव होने के कारण विषुव दिवस से होलिकोत्सव के प्रत्येक दो वर्ष में पन्द्रह से बीस दिन पहले हो जाने के कारण चैत्र शुक्ल प्रतिप्रदा को भी नव वर्ष आरम्भ के रूप में मनाया जाने लगा। चूँकि चान्द्र तिथियों को वेदों में रात्रि परिगण के लिए ही माना गया है **"रात्रिर्वै चन्द्रमाः"** इस नियम से इसलिए तदनुसार ही नवरात्र भी मनाया जाने लगा। इस प्रकार यह दोनों ही पर्व नववर्ष के आरम्भक विषुव दिवस के दृष्टिगत ही मनाये जाते हैं। तथ्य यह है कि वेदों के अनुसार तीस तपस्यमास की मध्य रात्रि में होलिका दाह और वहीं से एक मधुमास के प्रारम्भ के साथ नववर्ष महोत्सव मनाया जाना चाहिए।

२ मध्य विषुव महोत्सव स्थानीय वर्तमान में विविध उत्सव– जिस प्रकार आदि विषुव के स्थान पर ही होरी, होली और नवरात्रि मनायी जाती है, ठीक उसी प्रकार मध्य विषुव के स्थान पर शारदीय नवरात्र, दीपावली और छठ पर्व भी मनाया जाता है

उत्तरी गोलार्ध में वर्ष-आरम्भ के छः माह बाद **मध्यविषुव** पर जब रात-दिन बराबर हो जाते हैं तो यहीं से समशीतोष्ण शरद ॠतु का आरम्भ होता है। इस मध्य विषुव दिवस पर रात-दिन बराबर होने के बाद उत्तरी गोलार्ध में अगले ही दिन से दिन की अपेक्षा रात्रियाँ बड़ी होनी आरम्भ हो जाती हैं। जो तीन महीने तक क्रमशः बढ़ती और फिर तीन महीने तक क्रमशः थोड़ी-थोड़ी कम होती हुई छः माह बाद आदि विषुव पर दिन के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बराबर हो पाती हैं। इस प्रकार इन छः महीनों में दिन की अपेक्षा रात्रियाँ बड़ी होती हैं। रात्रि में प्रकाश की आवश्यकता होती है। इसलिए भावी लम्बी रात्रों को प्रकाशित रखने के उल्लास के रूप में इस विषुव महोत्सव को **दीपावली** के रूप में मनाया जाता था। इस समय धान्य-अन्न की प्राप्ति होने के कारण लक्ष्मी की स्थिरता बनाये रखने की दृष्टि से लक्ष्मी के प्रतीक रूप दीप का पूजन किया जाता था। व्यापारी अपने व्यापार में लक्ष्मी आगमन के प्रतीक रूप से इसी दिन अपने बहीखातों का पूजन करता था और नया वित्तवर्ष प्रारम्भ करता था। बाद में जब आर्तव मासों का सम्यक् ज्ञान किन्हीं कारणों से नष्ट हो गया और उनकी जगह भी केवल नाक्षत्र चाँन्द्र मासों का ही प्रयोग किया जाने लगा तो यह पर्व इस विषुव के बाद पड़ने वाली अमावस्या की अंधेरी रात के दृष्टिगत मनाया जाने लगा। चूँकि वैदिक काल में यहीं से वित्तवर्ष का आरम्भ होता था इसलिए उसी के अनुकरण रूप में आज भी भारत में दीपावली को लक्ष्मीपूजन एवं बहीखाता पूजन की परम्परा है। भारत का व्यापारी वर्ग आज भी इस दीपावली को वित्तवर्ष के रूप में मनाता है।

शारदीय नवरात्र—चूँकि चाँन्द्र महीनों की स्थिति निश्चित और व्यवस्थित नहीं है। प्रायः देखा जाता है कि इस विषुव दिवस के बाद या समीप ही कुआर के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि आती है। इसीलिए इस शुक्ल प्रतिपदा से नव दिनों तक विषुव दिवस से आरम्भ होने वाली शरद ऋतु के दृष्टिगत शारदीय नवरात्र मनाया जाता है।

छठ पर्व—इसके अलावा पूरे पूर्वांचल में विशेष रूप से, मनाया जाने वाला छठ पर्व दीपावली के छठे दिन कार्तिक शुक्ल षष्ठी से मनाया जाता है, मूलतः यह पर्व भी विषुव दिवस के स्थान पर ही मनाया जाता है। क्योंकि इस कार्तिक शुक्ल षष्ठी का सूर्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। बल्कि आदि विषुव से छः आर्तव मासों की पूर्णता ही षाण्मासिक मध्य विषुव दिवसीय सूर्य षष्ठी होती है। जो डूबते सूर्य से पूर्ण होती है। इसीलिए यह पर्व डूबते सूर्य को अर्घ्य देकर प्रारम्भ होता है, और अग्रिम षाण्मासी षष्ठी अगले दिन के प्रातःकाल से प्रारम्भ होती है, इसलिए इस पर्व का समापन उगते सूर्य को अर्घ देने के साथ पूर्ण किया जाता है। जिसमें भावी छः महीनों के सुखद दिनों की सूर्य से प्रार्थना की जाती है। मूलतः विषुव दिवस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के ज्ञान का अभाव हो जाने के कारण, षष्ठी नाम की दृष्टि से दीपावली के छठे दिन से किया जाने लगा। जिसका वास्तविक रूप मध्य विषुव दिवस के एक दिन पूर्व से प्रारम्भ होकर विषुव दिवस के बाद आने वाले दिन को पूर्ण किया जाता था। इस प्रकार यह छठ पर्व भी **मध्य विषुव दिवसीय षाण्मासिक षष्ठी** ही है।

७-ऋतुसन्धियों और ऋतुओं का प्रभाव

इस प्रकार से यजुर्वेद में स्पष्ट रूप से आर्तव संवत्सर वर्ष के छः ऋतु विभाग और एक-एक ऋतु के दो-दो महीनों का नाम वर्णित है। किन्तु ऋग्वेद में, जो विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है, में पाँच ऋतुओं को ही प्रभावी माना गया है। वर्तमान में भी शिशिर ऋतु का विशेष व्यवहार दृष्टिगोचर नहीं होता, अस्तु उसके प्रारम्भिक २० दिन हेमन्त ऋतु में और शेष ४० दिन वसंत में मानना ही समुचित है। प्राचीन काल से वर्तमान समय तक यह तथ्य प्रचलित है, कि ऋतुओं की संधि में व्याधियों-रोगों की बहुलता होती है। इस विषय में भी श्रुति सावधान करते हुए कहती है—

"ऋतु संधिषु वै व्याधिर्जायते।[१]"

निश्चय ही ऋतुओं की संधि में व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

"ऋतु संधिषु हि व्याधिर्जायते।[२]"

ऋतुओं की संधि में ही व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

हम देखते हैं कि सम्पूर्ण कृषि व्यवस्था ऋतुओं के अनुसार ही चलती है, और उन-उन ऋतुओं के व्यवस्थित होने पर ही व्यवस्थित होती है। जब ऋतु अपने प्राकृतिक रूप में नहीं होती है, तो वह कृषि के लिए प्राकृतिक आपदा के रूप में कही जाती है। केवल कृषि व्यवस्था ही ऋतुओं के अनुकुल होती है, ऐसा कहना उचित नहीं है, अपितु प्राणियों की उत्पत्ति और उनमें प्रजनन की सामर्थ्य भी ऋतु-नियंत्रित ही है। इन सभी तथ्यों को श्रुति स्पष्ट रूप से कहती है। जैसे—

"ऋतवः समिद्धाः प्रजाश्च प्रजनयन्त्योषधीश्च पचन्ति।[३]"

---

१. गोपथ ब्रा.उत्तरभाग १/१९। २. कौषीतकी ब्रा.५/१।
३. शतपथ ब्रा.१/३/४/७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऋतुएं सम्यक् रूप से आती हुई अपने अनुकूल प्राणियों को प्रकृष्ट रूप से उत्पन्न करती हैं, और वनस्पतियों को, फलियों को पकातीं हैं।

"ऋतवो वा इदं सर्वमन्नाद्यं पचन्ति।[१]"

निश्चय ही यह ऋतुएं ही इन सब अन्नादि को पकाती हैं।

"तस्माद्यथर्तु वायुः पवते।[२]"

इसलिए जैसी ऋतु होती है, वैसी हवा बहती है।

"तस्माद्यथर्त्वोषधयः पच्चन्ते।[३]"

इसलिए जैसी ऋतु होती है, उसी प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ, फलियाँ पैदा होती हैं, और पकती हैं।

"सेयं वागृतुषु प्रतिष्ठिता वदति।[४]"

वह यह वाणी भी ऋतुओं में, ऋतुओं के अनुकूल ही, प्रतिष्ठित होती है, बोलती है।

---

१. शतपथ ब्रा.४/३/३/१२। २. ताण्ड्यमहा ब्रा.१०/९/२।
३. ताण्ड्यमहा ब्रा.१०/८/१। ४. शतपथ ब्रा.७/४/२/३७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पञ्चम अध्याय
चन्द्रमा

१-श्रुतियों में चन्द्रमा की उत्पत्ति

चन्द्रमा की उत्पत्ति के विषय में पौराणिक और वैज्ञानिक विविध विचार प्राप्त होते हैं। पौराणिक कथाओं में चन्द्रमा की उत्पत्ति देवासुर संग्राम के समय समुद्र मंथन से हुई। आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार, चन्द्रमा, सूर्य या सूर्य जैसे अन्य किसी शक्तिशाली नक्षत्र के, पृथ्वी के समीप से गुजरने पर, उसकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति से पृथ्वी का एक अंश टूट कर, पृथ्वी से अलग होकर, पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण, उसकी परिक्रमा करने लगा। वही चन्द्रमा है, आओ देखें वेदों में और वैदिक श्रुतिओं में चन्द्रमा की उत्पत्ति के विषय में क्या लिखा है। इस सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण की निम्नलिखित आख्यायिका अत्यन्त विचारणीय है। देखें यह आख्यायिका—

"तद्वेव खलु हतो वृत्रः, स यथा दृतिर्निष्पीतः, एवं संव्लीनः शिश्ये। यथा निर्धूतसक्तुर्भस्त्राएवं संव्लीनः शिश्ये। तमिन्द्रोऽभ्यादुद्राव हनिष्यन्।[1]"

"स होचाव-मा नु मे प्रहासीः, त्वं वै तदेतर्ह्यसि-यदहम् व्येव मा कुरु, 'मामुया भूवम्' इति। स वै 'मेऽन्नमेधि' इति। 'तथा' इति। इन्द्रः तं वृत्रं द्वेधाऽन्वभिनत्, तस्य यत् सौम्यं न्यक्तमास-तं चन्द्रमसं चकार। अथ यदस्यासुर्यमासतेनेमाः प्रजाः उदरेणाविध्यत् । तस्मादाहुः— वृत्र एव तर्ह्यन्नाद आसीद् वृत्र एतर्हि' इति। इदं यदसौ आपूर्यते-अस्मादेवैतल्लोकादादाप्यायते।

अथ यदिमाः प्रजाः, अशनमिच्छन्ते-अस्मा एवैतद् वृत्रायोदराय बलिं हरन्ति। स यो हैवमेतं वृत्रमन्नादं वेद-अन्नादो हैव भवति।[2]"

---

१. शतपथ ब्रा.१/६/३/१६। २. शतपथ ब्रा.१/६/३/१७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"तद्वा एष एवेन्द्रो य एष तपति। अथैष एव वृत्रो यच्चन्द्रमाः।" सोऽस्यैव भ्रातृव्य जन्मेव। तस्माद यद्यपि पुरा दूरमिवोदितः, अथैवमेतां रात्रिमुपैव न्याप्लवते। सोऽस्य व्यात्तमापद्यते।"[1]

हिन्दी व्याख्या—वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु[2] धातु से **'वेव'** शब्द बना है। **तस्माद् वेव** अथवा **तस्य वेव** इस प्रकार तत्पुरुष समास कर **तद्वेव** शब्द बना है। अर्थात् उस सूर्य की विद्युत तरंगात्मक किरणों की गति तीव्रता,तेजस्विता एवं व्याप्ति से उत्पन्न और प्रक्षिप्त वृत्त **'खलु'**– निश्चय ही, **'हतः'** मारा गया जैसा हुआ। वह सूर्य से अलग फेंका हुआ **'दृतिर्निष्पीतः'** जल से अलग किये हुए मत्स्य मछली के जैसा **एवं संव्लीनः शिश्ये–** अन्तर्लीन मूर्च्छित के समान सोता हुआ सा था। अथवा **यथा निर्धूतसक्तुर्भस्त्रा** चमड़े से ढके हुए सत्तू के पिण्ड के जैसा, **एवं संव्लीनः शिश्ये–** इस प्रकार सम्यक् रूप से अपने में लीन सोया हुआ सा था। **तमिन्द्रोऽभ्यादुद्राव हनिष्यन्–** उस वृत्त को सूर्य ने मारने की इच्छा से सब प्रकार से अपनी शक्तियों से आवृत्त कर लिया। तब **स होचाव-** उस वृत्र ने कहा– **मा नु मे प्रहासीः** तुम निश्चय ही मुझको मत मारो। **तदेतर्ह्यसियदहम्** – निश्चय ही जो यह मैं हूँ, वह तुम ही हो, तुमसे ही मेरी उत्पत्ति होने के कारण, तुम्हारा ही अंश होने के कारण, तुम ही मैं हूँ। **व्येव मा कुरु-** मेरा विभाग मत करो। **मामुया भूवम्' इति-** मैं इस काया से अलग न होऊँ। **स वै 'मेऽन्नमेधि' इति–** तब सूर्य ने कहा कि मेरे लिए अन्न वनस्पतियाँ एवं प्राणी रूप जीवन बढ़ाओ। **'तथा' इति-** तब उस वृत्र ने कहा ऐसा ही हो। **इन्द्रः तं वृत्रं द्वेधाऽन्वभिनत्-** तब उस सूर्य रूप इन्द्र ने उस वृत्र को दो अनुकूल भागों में अलग-अलग कर दिया। **तस्य यत् सौम्यं न्यक्तमास-तं चन्द्रमसं चकार-** उसका जो सौम्य अलग किया अंश था, उसको चन्द्रमा किया। **अथ यदस्यासुर्यमासतेनेमाः प्रजाः उदरेणाविध्यत्–**अब जो इसका आसुर्य विशाल बड़ा भाग था, उस उदरात्मक भाग के द्वारा यह प्रजा भलीभाँति उत्पन्न हुई। **तस्मादाहुः– वृत्र एव तर्ह्यन्नाद आसीद्–**इसलिए कहते हैं कि वृत्र ही अन्न का उत्पादन करने वाला और अन्न का भक्षण करने वाला अन्नाद हुआ। **वृत्र एतर्हि' इति–** निश्चय ही यह चन्द्र एवं पृथ्वी ही वृत्र है। **इदं यदसौ**

---

१. शतपथ ब्रा.१/६/४/१८। २. पाणिनीय धातु पाठ अदादि ४१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आपूर्यते-अस्मादेवैतल्लोकादादाप्यायते– यह जो चन्द्रमा घटता है और पूर्ण होता है, इस पृथ्वी लोक के द्वारा ही होता है।

मीमांसा–चन्द्रमा का जो भाग पृथ्वी की ओर है पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए चन्द्रमा का वह भाग सदैव पृथ्वी की ही ओर रहता है, इसलिए श्रुति ने अनुकूल दो भाग कहा है। पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए चन्द्रमा का पृथ्वी की तरफ का भाग जितने अंश में सूर्य से प्रकाशित होने से दिखता है, उतने अंश में चन्द्रमा क्रमशः घटता और बढ़ता है। चूँकि चन्द्रमा द्वारा पृथ्वी की की जा रही अनुकूल परिक्रमा के कारण ही ऐसा दर्शन होता है। इसलिए श्रुति ने कहा कि वह इस पृथ्वी लोक के द्वारा ही होता है।

अथ यदिमाः प्रजाः, अशनमिच्छन्ते–अब जो यह प्रजा अशन-भोजन की इच्छा करती है। **अस्मा एवैतद् वृत्रायोदराय बलिं हरन्ति-** वह इस वृत्र का जो उदरात्मक भाग पृथ्वी है, उससे ही उदर के लिए आहार का आहरण करते हैं। **स यो हैवमेतं वृत्रमन्नादं वेद-अन्नादो हैव भवति-** वह जो इस पृथ्वी और चन्द्रमा रूप वृत्र को अन्न का उत्पादन करने वाला और पचाने वाला जानते है, निश्चय ही वे अन्न का उत्पादन करने वाले और अन्न का उपभोग करने वाले होते हैं।

तद्वा एष एवेन्द्रो य एष तपति– वह निश्चय से यह ही इन्द्र है, जो यह तपता है, अर्थात् यह सूर्य ही इन्द्र है। **अथैष एव वृत्रो यच्चन्द्रमाः –** और यह ही वृत्र है जो चन्द्रमा है। **सोऽस्यैव भ्रातृव्य जन्मेव–** इसलिए वह इसका भ्रातृव्य जन्मा ही है, **तस्माद्–यद्यपि पुरा दूरमिवोदितः –** इसलिए यद्यपि यह पहले दूर उदित हुआ दिखता है, **अथैवमेतां रात्रिमुपैव न्याप्लवते-** किन्तु तेजी से चलता हुआ यह अमावस्या की रात्रि को भलीभाँति इसी को प्राप्त हो जाता है, और नहीं दिखाई पड़ता। **सोऽस्य व्यात्तमापद्यते–** उस अमावस्या को वह चन्द्रमा इस सूर्य के चारो तरफ फैले हुए किरणात्मक मुख में ही समा जाता है।

२-चन्द्र ग्रहण एवं सूर्य ग्रहण

मीमांसा–पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ चन्द्रमा जब पृथ्वी के सूर्य की तरफ से ठीक दूसरी तरफ होता है, अर्थात् मध्य में पृथ्वी होती है, एक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तरफ सूर्य होता है, और एक तरफ चन्द्रमा होता है, तब पृथ्वी से सूर्य की किरणों से प्रकाशित हो रहे चन्द्रमा का पूर्ण भाग दिखाई देता है। पृथ्वी वासियों के लिए पूर्ण चाँद दिखने की यह पूर्णिमा तिथि होती है। इस समय यह चन्द्र पृथ्वी से जिस तरफ होता है, वह सूर्य उसके ठीक दूसरी दिशा में होता है। इसलिए पूर्णिमा को पश्चिम में सूर्य डूबने के साथ पूरब में पूर्ण चन्द्रोदय होता है। इसी तथ्य को श्रुति ने कहा कि पहले वो यद्यपि दूर उदित हुआ-सा दिखता है, किन्तु फिर वहाँ से वह पृथ्वी की परिक्रमा में तेजी से चलता हुआ लगभग पन्द्रहवें दिन सूर्य की ही दिशा में आ जाता है। अर्थात् चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के बीच में सूर्य के समीप पहुँच जाता है। तब छोटा चन्द्रमा पूरी तरह फैली हुई सूर्य की किरणों में ही समा जाता है। इसे ही श्रुति ने कहा कि इस अमावस्या को वह सूर्य के किरणात्मक मुख में ही पड़ जाता है। यहाँ तक कि उसकी छाया भी पृथ्वी पर नहीं पड़ती और जब छाया पड़ती है, तो वही सूर्य ग्रहण होता है। इसलिए यह निश्चित है कि सूर्य ग्रहण हमेशा अमावस्या को ही होगा। इसके विपरीत पूर्णिमा को जब चन्द्र और सूर्य के बीच में पृथ्वी होती है, तब पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ने से चन्द्र ग्रहण होता है। और इसीलिए यह भी सुनिश्चित है कि, चन्द्रग्रहण हमेशा पूर्णिमा को ही होगा।

इस तथ्य को इन श्रुतियों में और अधिक स्पष्ट किया गया है—

"चन्द्रमा वा अमावास्यायामादित्यमनुप्रविशति।[१]"

निश्चय ही चन्द्रमा अमावस्या के दिन आदित्य में अनुप्रवेश करता है। अनुप्रवेश का अर्थ है अनुकूल प्रवेश करता है, अर्थात् चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के बीच में, ठीक सीध में आ जाता है।

मीमांसा- इसलिए सूर्य का जितना भाग चन्द्रमा के द्वारा ढक जाने के कारण उसका प्रकाश जितने अंश में पृथ्वी तक नहीं पहुँचता अमावस्या को उतने अंश में पृथ्वीवासियों के लिए सूर्य ग्रहण होता है।

"अमावस्यायां सः चन्द्रमाः अस्य सूर्यस्य व्यात्तमापद्यते। सूर्यः तं चन्द्रमसं ग्रसित्वा उदेति। स चन्द्रमाः न पुरस्तान्न न पश्चाद्ददृशे।[२]"

अमावस्या में वह चन्द्रमा इस सूर्य के फैले हुए मुख में पड़ जाता है।

१. ऐतरीय ब्रा.८/२८। २. शतपथ ब्रा.१/६/४/१-१९ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूर्य उस चन्द्रमा को निगल कर उदित होता है। वह चन्द्रमा न सामने से न पीछे से ही दिखाई देता है।

मीमांसा—सूर्य चन्द्रमा से हजारों गुना बड़ा है और उस विशाल जाज्वल्यमान सूर्य से सब तरफ अनन्त किरणें निकल रही हैं। ऐसी स्थिति में सूर्य की अपेक्षा अत्यन्त छोटा चन्द्रमा यद्यपि अमावस्या को पृथ्वी और सूर्य के मध्य में स्थित होता है, तो भी विशाल सूर्य से आती हुई किरणों से चन्द्रमा पृथ्वी से दूरी के दृष्टिगत सूर्य की किरणों में पूर्ण रूप से गायब हो जाता है। उसकी छाया तक पृथ्वी पर नहीं आती। इसी तथ्य को श्रुति कह रही है कि, सूर्य चन्द्रमा को निगल कर उदित होता है, और किसी भी तरफ से दिखाई नहीं देता। यद्यपि पृथ्वी से जब चन्द्रमा की दूरी कम होती है, तब अमावस्या को पृथ्वी के जिस भूभाग में सूर्य की किरणें चन्द्रमा के अवरोध के कारण नहीं पहुँच पाती, पृथ्वी के उतने भूभाग में उतने ही अंश में सूर्य ग्रहण होता है।

३-सूर्य के प्रकाश से ही चन्द्रमा का प्रकाश

वेदों के अनुसार सूर्य के प्रकाश से ही चन्द्रमा प्रकाशित होता है, उसका स्वयं का कोई प्रकाश नहीं है। यह तथ्य निम्न वेद मंत्र में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है—

"सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमाः।[१]"

सुन्दर सत्कर्म के सम्पादक इस चन्द्रमा की रश्मियाँ-किरणें सूर्य की ही रश्मियाँ हैं। चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होता है।

इस मंत्र की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार है—

सुषुम्णः इति। सुयज्ञियः इत्येतत्। सूर्यरश्मिः इति। सूर्यस्यैव हि चन्द्रमसो रश्मयः।[२]"

'सुषुम्णः' का अर्थ है सुन्दर सत्कर्म करने वाला। **'सूर्यरश्मिः इति'** अर्थात् **'सूर्यरश्मिश्चन्द्रमाः'** इस शब्द का अर्थ है कि सूर्य की ही रश्मियाँ चन्द्रमा की रश्मियाँ हैं। इसका अर्थ हुआ कि सूर्य की किरणों से ही चन्द्रमा प्रकाशित होता है, और सूर्य की किरणें ही चन्द्रमा से प्रत्यावर्तित होकर हमें दिखाई देती हैं। चन्द्रमा में स्वयं का कोई प्रकाश नहीं है।

१. यजुर्वेद १८/४०। २. शतपथ ब्रा.९/४/१/९।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रुतियों में यह तथ्य भी स्पष्ट किया गया है कि चन्द्रमा में जो काले धब्बे दिखाई पड़ते हैं, वे पृथ्वी से सूर्य की आकर्षण शक्ति के कारण चन्द्रमा के उखड़कर अलग होने में हुए गड्ढे ही काले धब्बों के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

"एतद्वा इयम् भूमिः अमुष्यां दिवि देवयजनमदधात् यदेतच्चन्द्रमसि कृष्णमिव।[1]"

निश्चय ही यह भूमि का ही त्रुटितांश है, जो इस द्युलोक में सूर्य देव ने सत्कर्म की स्थापना के लिए स्थापित किया, वह ही यह चन्द्रमा में कृष्णत्व है।

"स यदस्यै पृथिव्या अनामृतं देवयजनमासीत् तच्चन्द्रमसि न्यदधत तदेतच्चन्द्रमसि कृष्णम्।[2]"

वह जो इस पृथ्वी के लिए पृथ्वी का अनामृत-खण्डित किया गया रूप देव यजन सूर्यदेव का कर्म था, वह ही यह चन्द्रमा में कालेपन के रूप में स्थित है।

"यदस्याः पृथिव्याः यज्ञीयमासीत्तदमुष्यां दिवि अदधात् तद्दश्चन्द्रमसि कृष्णत्वत्म्।[3]"

जो इस पृथ्वी का यज्ञीय भाग था, अर्थात् पृथ्वी से अलग किया भाग था, वह ही इस द्युलोक में स्थापित किया गया, वह ही यह पृथ्वी से अलग किये जाने का प्रतीक रूप चन्द्रमा में कृष्णत्व है, वह इस पृथ्वी का टूटा हुआ भाग ही चन्द्रमा में कालेपन के रूप में दिखता है।

"यद्दश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयं श्रितम्।[4]"

यह जो चन्द्रमा में कृष्णत्व है, वह पृथ्वी का हृदय है।

मीमांसा—यहाँ उस मूल आख्यायिका के ही तथ्य को दर्शाते हुए यह स्पष्ट किया गया कि सूर्यदेव ने पृथ्वी पर जीवन एवं अन्नरूप सत्कर्म के लिए जो पृथ्वी से चन्द्रमा को अलग कर स्थापित किया। वह उस समय, पृथ्वी से चन्द्रमा के उखड़ने में जो गड्डे हुए थे, वे पृथ्वी के चिह्न ही चन्द्रमा में काले धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। हृदय इसलिए क्योंकि यह टूटा हुआ भाग सदैव पृथ्वी की ओर ही रहता है। पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ

---

१. ऐतरेय ब्रा. ४/२७। २. शतपथ ब्रा.१/२/५/१८।
३. तैतिरीय ब्रा.१/१/३/३। ४. मंत्र ब्रा.१/५/१३।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चन्द्रमा जैसे-जैसे आगे बढ़ता है वह त्रुटितांश वैसे-वैसे पृथ्वी की तरफ उतना ही घुमता रहता है जिससे वह भाग सदैव पृथ्वी की ओर बना रहे।

४-पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य के सम्बन्ध में आधुनिक वैज्ञानिक डार्विन का सिद्धान्त

चन्द्रोत्पत्ति के विषय में डार्विन महोदय का सिद्धांत भी शतपथ में व्याख्यायित इस आख्यायिका के तथ्य ही प्रस्तुत करता है। उन्होंने कहा है कि पहले चन्द्रमा पृथ्वी का ही एक भाग था। तब पृथ्वी का तापमान अति उच्च था और पिण्ड द्रवीभूत पदार्थमय था। शनैः-शनैः भ्रमण के वेग से पिण्ड दीर्घ वृत्ताकार हो गया। सूर्य के आकर्षण से पिण्ड में अत्युच्च आप्लाव उत्पन्न हुए। उन उच्च आप्लावों के कारण सूर्य की दिशा में उस पिण्ड के शिर के समान गोल आकृति उत्पन्न हो गई और फिर आकर्षण की अधिकता के कारण यह भाग पृथ्वी से टूट कर अलग हो गया। यह अलग हुआ छोटा भाग ही चन्द्रमा है, और उदर धड़ात्मक मूल भाग पृथ्वी है।

विशेष मीमांसा– आख्यायिका के अनुसार पृथ्वी पर जीवनोत्पत्ति के लिए चन्द्रमा का पृथ्वी से अलग होना आवश्यक था। जहाँ पृथ्वी से चन्द्रमा का यह भाग टूट कर अलग हुआ, निश्चित रूप से पृथ्वी का वह भाग भूमध्य रेखा के समीप होगा। जीवनोत्पत्ति का प्रारम्भ भी इसी स्थल से हुआ होगा। जो गवेषणीय है। साथ ही यह भी गवेषणीय है कि चन्द्रमा के अलग होने से किन कारणों से और किन परिवर्तनों से पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति हुई। मैं इस आख्यायिका की मीमांसा के माध्यम से आधुनिक वैज्ञानिकों को वैज्ञानिक गवेषणा करने का आवाहन करता हूँ।

५-नाक्षत्र चाँद्रमास व्यवस्था

अपनी धुरी पर घूमती हुई पृथ्वी से मध्य आकाश में छोटे-छोटे तारे पृथ्वी के घूमने की विपरीत दिशा में पूरब से पश्चिम जाते हुए दिखाई देते हैं। पृथ्वी के एक बार पूरा घूम जाने पर अर्थात् २४ घंटे बाद, जिस समय जिन तारों को जहाँ देखा था, दूसरे दिन भी उसी समय वह तारे लगभग उसी जगह दिखाई देते हैं। इस प्रकार २४ घंटे में वृत्ताकार मध्य आकाश के तारे हमारे सामने से घूम जाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी की वार्षिक गति के कारण इनकी स्थिति में वार्षिक परिवर्तन भी स्पष्ट दिखाई देता है। गुरु, शुक्र आदि सभी ग्रह भी इन नक्षत्र समूहों के समीप से प्रतिदिन उसी समय पर कुछ-कुछ अपने स्थान परिवर्तन के साथ दिखाई पड़ते हैं। उनका यह स्थान-परिवर्तन पृथ्वी की वार्षिक परिक्रमण गति और उन-उन ग्रहों की स्वयं की गति के कारण होता है। इसी तरह नक्षत्र मृगशिरा आदि ग्रीष्म ऋतु में रात्रि में जिस समय जिस जगह दिख रहे होते हैं, प्रतिदिन उसी समय ठीक उसी जगह नहीं दिखते अपितु अपनी पूर्वदिन की जगह से अगले दिन थोड़ा हटकर दिखाई देते हैं। इस प्रकार छः माह बाद हेमन्त ऋतु में १२ घंटे के अंतराल पर दिखाई पड़ते हैं। उनमें हो रहा यह स्थान-परिवर्तन पृथ्वी की वार्षिक गति के कारण होता है।

तथ्य यह है कि ये तारे छोटे-छोटे नहीं अपितु हमारे सूर्य के समान बहुत बड़े-बड़े होने पर भी बहुत दूर होने के कारण छोटे-छोटे दिखाई देते हैं और सूर्य के समान प्रकाशमान होने पर भी मात्र टिमटिमाते हुए लगते हैं। अति दूरी पर होने पर भी पृथ्वी की चाल के क्रम से विपरीत चलते हुए दिखते हैं। जैसा कि वेद मंत्रों में आप ने स्पष्ट देखा कि पृथ्वी की द्विविध चाल है। अपनी धूरी पर दैनिक, और सूर्य की परिक्रमा करती हुई वार्षिक। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में हजारों हजार वर्ष पहले ऋषिओं ने जो सत्य देखा और लिखा, आज का विज्ञान भी वही कहता है।

पृथ्वी के एक बार पूरा घूम जाने में पूरे मध्य आकाश का जो मंडलाकार भाग आँखों के सामने से घूम जाता है, उसमें टिमटिमाते हुए तारों-नक्षत्रों का समूह पृथ्वी की निश्चित गति के विपरीत उसी गति में पूर्व से पश्चिम चलता हुआ दिखता है, और २४ घंटे बाद हर तारामंडल की पूर्णता पर अपने उसी स्थान पर पुनः होता है। इन टिमटिमाते तारों युक्त इस मध्य आकाश के पूर्ण मंडल को वेद मंत्र द्रष्टा ऋषियों ने नक्षत्र मंडल कहा है। इस पूरे नक्षत्र मण्डल को २७ समान भागों में इन तारों से बनने वाली काल्पनिक आकृतियों, कृत्तिका आदि २७ नामों से बाँटा गया है। पुनः इन नक्षत्रों के चार-चार छोटे-छोटे विभाग इनके चरण कहलाते हैं। इस प्रकार २७×४=१०८ नक्षत्र-चरणों का पूर्ण नक्षत्र मंडल या नभ मंडल होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इन्हीं १०८ चरणों के नक्षत्र मंडल की माला के भीतर पृथ्वी सहित सभी ग्रह घूम रहे हैं। इन १०८ चरणों से ही इन सभी ग्रहों की स्थिति एवं गति की गणना होती है। इसी की प्रतीकात्मक हमारी धारण की जाने वाली, गणना की और जप की माला भी १०८ दानों की होती है। क्योंकि धरती के साथ हम सभी भी इन १०८ नक्षत्र चरणों के भीतर चक्कर काट रहे हैं। कोई चाह कर भी इस माला के भीतर से बाहर नहीं जा सकता है। धरती की परिक्रमा करता हुआ चंद्रमा भी प्रतिदिन इन नक्षत्रों के बीच से जाता हुआ स्पष्ट दिखता है।

यहाँ नक्षत्र मंडल का २७ विभाजन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि २७ की संख्या सम नहीं है। वेदों में इस नक्षत्र मंडल का २७ नक्षत्रों में विभक्त होना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस विषम संख्या का वैदिक मधु माधव आदि आर्तव महीनों का इन २७ विभागों से कोई सम्बंध प्रतीत नहीं होता है। १२ महीनों की दृष्टि से नक्षत्रों पर सूर्य के दिखाई पड़ने के आधार पर यदि इन आर्तव मासों की रचना की जाती तो इस नक्षत्र मंडल के १२ विभाग किये गये होते जो बहुत ही आसान था। किन्तु इस प्रकार का सरल विभाग न करके अत्यन्त जटिल २७ विभाग करना निश्चित रूप से काफी मंथन कर किया गया प्रतीत होता है। वेदों में २८वें अभिजित् नक्षत्र का भी उल्लेख है, किन्तु गणना में वह २८वाँ नक्षत्र भी इन्हीं २७ नक्षत्रों के भीतर आ जाता है जिसका विस्तृत विवेचन अथर्ववेद में उल्लिखित नक्षत्रों के स्वरूप वर्णन के समय करेंगे। वेदों का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि, इन सभी नक्षत्रों का नामकरण और वर्गीकरण चन्द्रमा के साथ उनकी युति को लेकर किया गया है। इस सम्बंध में ऋग्वेद का यह मंत्र इस रहस्य से पर्दा उठाता हुआ दिखता है। देखें ये मंत्र—

"अथो नक्षत्रणानामेषामुपस्थे सोम अहितः।[१]"

नक्षत्रों के उपस्थ में अच्छी तरह भली भाँति चन्द्रमा को स्थापित किया।

इस नक्षत्र मंडल के २७ विभाग करने का रहस्य यह है कि इनमें से १२ नक्षत्रों पर चन्द्रमा की पूर्णिमा तिथियाँ जो इस विभाजन के समय

१. ऋग्वेद १०/८५/०२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वप्रथम आयीं उनसे ही चंद्र पूर्णमास का नामकरण किया गया। वह इस प्रकार क्रमशः १ कृत्तिकापूर्णमासी, २ मृगशीर्ष पूर्णमासी, ३ पुष्य पूर्णमासी, ४ मघा पूर्णमासी, ५ फल्गुनी पूर्णमासी, ६ चित्रा पूर्णमासी ७ विशाखा पूर्णमासी, ८ ज्येष्ठा पूर्णमासी, ९ अषाढ़ा पूर्णमासी, १० श्रवण पूर्णमासी, ११ भाद्रपद पूर्णमासी, १२ अश्विन पूर्णमासी।

ध्यान रहे वैदिक ग्रन्थों में जगह-जगह इन्हें चन्द्र पूर्णमास कहा गया है। जैसे—**कृतिकापूर्णमासः, फल्गुनीपूर्णमासः, चित्रापूर्णमासः** इत्यादि। बाद में मृगशीर्षपूर्णमास को आग्रहायण भी कहा गया है। जिससे लोकमान्य तिलक ने विषुव के बाद मृगशीर्ष नक्षत्र पर पूर्णिमा कब पड़ती थी इसकी गणना कर इसे लिखे जाने के काल का निर्धारण किया है। लेकिन यहाँ यह तथ्य विशेष रूप से ध्यातव्य है कि, वैदिक नक्षत्रों में पहला नाम कृतिका नक्षत्र का है। इसका मतलब यह हुआ कि जब यह चन्द्र नाक्षत्रमास व्यवस्था बनायी गयी तो विषुव के बाद पड़ने वाली प्रथम पूर्णिमा कृतिका पूर्णिमा ही होती थी।

६-अधिकमास और क्षयमास व्यवस्था

१. अधिकमास– यहाँ वासंतिक विषुव संपात पर फल्गुनी नक्षत्र पर यदि पूर्णिमा कला हुई तो उसके बाद के घटना क्रम पर विचार करते हैं। जैसा कि स्पष्ट किया गया है कि स्थिर नक्षत्रों के सम्बन्ध में सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी से सूर्य जिस नक्षत्र पर दिख रहे होते हैं, पूर्ण परिक्रमा के उपरान्त पुनः सूर्य जब उसी नक्षत्र के उसी बिन्दु पर दिखाई दें तो इतने समय को एक नाक्षत्र सौर वर्ष कहते हैं, उसका मान दिनादि ३६५ दिन ६ घंटा १२ मिनट ३६ सेकण्ड है। अर्थात् जब फल्गुनी नक्षत्र पर विषुव सम्पात में पूर्णिमा कला हुई तब सूर्य भाद्रपद नक्षत्र पर दिख रहे थे। और इतने दिनों बाद पुनः सूर्य उसी बिन्दु पर भाद्रपद नक्षत्र पर दिखेंगे। किंतु चन्द्रमा वहीं से पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ इतने दिनों में पृथ्वी की १२ परिक्रमाएँ पूर्ण कर १३वीं परिक्रमा में होगा किन्तु वहाँ चन्द्रमा की पूर्णिमा कला नहीं होगी। क्योंकि चन्द्रमा द्वारा पृथ्वी की एक परिक्रमा ही एक चान्द्रमास होता है और ऐसी १२ परिक्रमाओं का एक चान्द्र वर्ष और इन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१२ परिक्रमाओं में लगने वाला समय ३५४ दिन ८ घंटा ४८ मिनट ३८ सेकेण्ड होता है। यह उक्त नाक्षत्र सौर वर्ष से १० दिन २२ घंटा ३३ मिनट ३६ सेकेण्ड कम होता है। इस प्रकार १२ वें चान्द्रमास में आने वाली फल्गुनी पूर्णिमा, नाक्षत्र सौर वर्ष से इतने समय पूर्व ही आ जायेगी। उसके बाद आने वाली १३वीं चित्रा नक्षत्र पर पड़ने वाली पूर्णिमा सूर्य के भाद्रपद नक्षत्र के उसी बिन्दु पर दिखने के १८ दिन १४ घंटा २ मिनट २३ सेकेण्ड बाद आयेगी। यही द्वितीय नाक्षत्र वर्ष की पहली पूर्णिमा होगी। द्वितीय नाक्षत्र वर्ष में फल्गुनी पूर्णिमा २१ दिन २१घंटा ७ मिनट १२ सेकेण्ड पहले ही आ जायेगी। और चित्रा पूर्णिमा ७ दिन १५ घंटा २८ मिनट ५१ सेकेण्ड नाक्षत्र सौर वर्ष की पूर्णता के बाद आयेगी। स्पष्ट है कि तीसरे नाक्षत्र सौर वर्ष में १२ से एक अधिक अर्थात् १३ पूर्णिमा कलायें होंगी। इस तृतीय वर्ष में एक अधिक अर्थात् १३ पूर्णिमा कलायें होने पर भी यह १३वीं पूर्णिमा कला सूर्य के भाद्रपद नक्षत्र के निर्धारित बिन्दु पर दिखने के ३ दिन ७ घंटा ४ मिनट ४५ सेकेण्ड पहले ही आ जायेगी। इसलिए यह पूर्णिमा कला वर्ष के प्रथम चरण में ही कहीं आयेगी, और वह अपने निश्चित नक्षत्र पर न होकर, उस नक्षत्र के पहले ही आ जायेगी, और इस प्रकार यह एक **अधिकमास** चाँद्र वर्ष में जुट जाने से यह चाँन्द्र वर्ष नाक्षत्र सौर वर्ष में परिणत हो जायेगा।

यहाँ विशेष रूप से इस **अधिकमास** के विषय में यह समझना है कि, इन नक्षत्रों पर पूर्णिमा के निर्धारण के साथ ही, जब निर्धारित नक्षत्र पर पूर्णिमा होने के बाद अगली पूर्णिमा अगले निर्धारित नक्षत्र के आने के पहले ही आये, तो ऐसी स्थिति में उसे नाक्षत्र **अधिकमास** मानने की व्यवस्था की गयी। जैसे विशाखा नक्षत्र पर पूर्णिमा होने के बाद अगली पूर्णिमा ज्येष्ठा नक्षत्र पर होनी चाहिए। किन्तु यदि यह पूर्णिमा ज्येष्ठा नक्षत्र आने के पहले ही आ जाये, तो अधिक ज्येष्ठ मास होगा। उसके बाद आने वाली अगली पूर्णिमा ज्येष्ठा नक्षत्र पर ही होगी।

२. क्षयमास– यहाँ यह भी ध्यान रहना चाहिए कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा गोल वृत्त में नहीं करती है, अपितु उसका परिक्रमा मार्ग दीर्घ वृत्ताकार है। जैसा कि वैदिक कालचक्र के वर्णन के समय आर्तव सौर मासों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और वर्ष का वेद मंत्रों के अनुसार वर्णन करते हुए स्पष्ट किया गया है। वहाँ यह भी बताया गया है कि इस दीर्घ वृत्ताकार पृथ्वी के परिक्रमा-मार्गात्मक कालचक्र का दर्शन करने वाले ऋषि का नाम इसी कारण दीर्घतमा हो गया। इस परिक्रमा-मार्ग पर पृथ्वी जब सूर्य के नजदीक से घूम रही होती है, ऐसी परिस्थिति में जिस नक्षत्र पर पूर्णिमा हुई उसकी अगली पूर्णिमा अग्रिम पूर्णमास हेतु निर्धारित नक्षत्र के बीतने पर उसके बाद वाले मास हेतु निर्धारित नक्षत्र पर आये तो उसके क्षयमास की व्यवस्था बनायी गयी। जैसे पुष्य नक्षत्र पर पूर्णिमा होने के उपरान्त उसकी अगली पूर्णिमा मघा नक्षत्र पर आनी चाहिए। किन्तु वह मघा नक्षत्र के बजाय फल्गुनी नक्षत्र पर आती है, तो माघ **क्षयमास** होगा। और जब कभी भी क्षयमास होता है, तो यह निश्चित है कि, उस **क्षयमास** के पहले **एक अधिकमास** हुआ होगा, और **क्षयमास** के बाद भी उसी वर्ष में पुनः **एक अधिकमास** होगा। यह क्षयमास कम से कम १३ वर्षों के अन्तराल के बाद ही आता है।

इस प्रकार इस नक्षत्र मंडल के २७ विभाग करके उनके २७ नाम और उन २७ नक्षत्रों के चार चरणों की व्यवस्था और उन नक्षत्रों में से १२ नक्षत्रों पर पूर्णिमा की व्यवस्था, उनमें उक्त क्रम से अधिकमास और क्षयमास की व्यवस्था द्वारा चान्द्रवर्ष को नाक्षत्र सौरवर्ष में परिणत होते रहने की दिव्य व्यवस्था की गयी, इसी तथ्य को समझाने के लिए ही वेद ने कहा—

"अथो नक्षत्रणानामेषामुपस्थे सोम आहितः।[१]**"**

"नक्षत्रों के उपस्थ में अच्छी तरह, भलीभाँति चन्द्रमा को स्थापित किया।"

पौर्णमासिक नाक्षत्र चाँन्द्रमास नामकरण—इसीलिए ऋषियों ने जिन नक्षत्रों पर चंद्रमा अपनी पूर्ण कला पर पहुँचा, उसी नक्षत्र के नाम से उस महीने का नाम रखा। उसी तिथि को उस चाँद्र महीने की पूर्णता मानते हुए उस चाँद्र माह की पूर्णमासी तिथि कहा। वह इस प्रकार है—

१. चित्रा नक्षत्र पर पूर्णिमा कला हो तो माह का नाम **चैत्र** तिथि **चैत्र पूर्णमासी** अर्थात् चैत्रमास पूर्ण। इसी प्रकार,

२. विशाखा नक्षत्र पर पूर्णिमा **वैशाख,**

---

१. ऋग्वेद १०/८५/०२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३. ज्येष्ठा नक्षत्र पर पूर्णिमा **ज्येष्ठ,**

४. आषाढ़ा नक्षत्र पर पूर्णिमा **आषाढ़,**

५. श्रवण नक्षत्र पर पूर्णिमा **श्रावण,**

६. भाद्रपद नक्षत्र पर पूर्णिमा **भाद्र,**

७. अश्विनी कुआर नक्षत्र पर पूर्णिमा **आश्विन** कुआर,

८. कृत्तिका नक्षत्र पर पूर्णिमा **कार्तिक,**

९. मृगशिरा नक्षत्र पर **मार्गशीर्ष,**

१०. पूषा नक्षत्र पर पूर्णिमा **पौष,**

११. मघा नक्षत्र पर पूर्णिमा **माघ,** और

१२. फाल्गुनी नक्षत्र पर पूर्णिमा **फाल्गुन** को भी समझना चाहिए।

७-चन्द्रमा पृथ्वी की और पृथ्वी के साथ-साथ सूर्य की परिक्रमा करता है।

यहाँ इस खगोल में जिस पिण्ड की, जिस पिण्ड से उत्पत्ति हुई है। वह पिण्ड अपने उस उत्पादक मूल पिण्ड की परिक्रमा करता रहता है। इसका कारण यह है कि, वृहद् भागात्मक मूल पिण्ड में गुरुत्वाकर्षण की अधिकता होती है। इसलिए उस गुरुत्वाकर्षण के बल के कारण यह उससे उत्पन्न हुआ पिण्ड अपने उस मूल पिण्ड से बधा हुआ उसकी परिक्रमा करता रहता है। इसलिए सूर्य से निकले हुए पिण्ड सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। इसी कारण से सूर्य से निकले हुए पिण्ड सूर्य के ग्रह हैं, और सूर्य उनका ग्रही है। चन्द्रमा पृथ्वी से अलग हुआ पृथ्वी का ही एक भाग है, और पृथ्वी सूर्य से निकली है, इस प्रकार पृथ्वी सूर्य का ग्रह है, और चन्द्रमा पृथ्वी का ग्रह एवं सूर्य का उपग्रह है। सूर्य से निकले हुए मुख्य पिण्ड हैं–बृहस्पति, शनि, पृथ्वी, मंगल, शुक्र, बुध। चन्द्रमा पृथ्वी से निकला हुआ पिण्ड है। इसलिए चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ, सूर्य की परिक्रमा कर रही पृथ्वी के साथ साथ सूर्य की भी परिक्रमा करता रहता है। इन ग्रहों के ग्रह सूर्य के उपग्रह हैं, किंतु वे उपग्रह जिस ग्रह से उत्पन्न हुए हैं, उस ग्रह के तो ग्रह ही हैं। अन्य ग्रहों की अपेक्षा अपने ग्रह का प्रभाव ग्रही ग्रह पर अधिक पड़ता है। इसी कारण से **पृथ्वी पर चन्द्रमा का प्रभाव** सर्वाधिक है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

८-चन्द्रमा का अपने अक्ष पर घूर्णन व चान्द्रमास

जिस प्रकार पृथ्वी अपने अक्ष पर प्रत्येक अहोरात्र में एक बार घूम जाती है, चन्द्रमा उस प्रकार अपने अक्ष पर नहीं घूमता है। बल्कि चन्द्रमा का जो भाग पृथ्वी की ओर सीधा है, अर्थात् पृथ्वी से उखड़ा हुआ पृथ्वी का हृदय रूप चन्द्रमा का कालिमांस युक्त भाग, सदैव पृथ्वी की ओर ही बना रहता है। चन्द्रमा के द्वारा की जा रही पृथ्वी की परिक्रमा में भी, उसकी उस स्थिति में किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार से पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ चन्द्रमा, पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी करने के साथ स्वाभाविक रूप से एक बार घूम जाता है। चूँकि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रही है, इसलिए पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ चंद्रमा स्वाभाविक रूप से पृथ्वी के साथ-साथ सूर्य की भी परिक्रमा कर लेता है। अपनी गति की दृष्टि से चंद्रमा पृथ्वी की एक परिक्रमा साढ़े सत्ताइस (२७.५) दिन में ही पूरी कर ले, किंतु पृथ्वी के भी सूर्य की परिक्रमा में लगातार आगे बढ़ते रहने के कारण वह पृथ्वी की एक परिक्रमा लगभग साढ़े उनतीस (२९.५) दिन में पूरी करता है। चंद्रमा द्वारा पृथ्वी की एक परिक्रमा का यह काल ही **एक चान्द्रमास** है।

९-चन्द्रकलाएँ और उनसे चान्द्रमास की उत्पत्ति

इस प्रकार पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ चंद्रमा जब सूर्य और पृथ्वी के मध्य में आ जाता है, तब सूर्य की तरफ का चन्द्र गोलार्ध तो सूर्य के सामने होने से प्रकाशित होता है, किंतु पृथ्वी से हमें दिखने वाला पृथ्वी की तरफ का चन्द्र गोलार्ध पूरी तरह अंधकार में होता है, जिससे चंद्रमा हमें नहीं दिखाई देता। क्योंकि पृथ्वी की भाँति चंद्रमा भी सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होता है, उसका अपना कोई प्रकाश नहीं होता, जैसा कि यह वेद वचन है—

'सूर्यरश्मिश्चन्द्रमाः।[१]'

"सूर्य की किरणें ही चंद्रमा पर हैं।" अर्थात् सूर्य के प्रकाश से ही चन्द्रमा प्रकाशित है। वह प्रकाशित भाग सूर्य की तरफ होने से हमें नहीं

१. यजुर्वेद मा. संहिता १८/४०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिखाई देता और जो भाग हमारे सम्मुख होता है, वह सूर्य के विपरीत दिशा में होने से पूर्ण रूप से अंधकार में होता है, इसलिए वह भी हमें नहीं दिखाई देता। इस प्रकार सूर्य और पृथ्वी के बीच पहुँचा हुआ चन्द्रमा जिस रात्रि में हमको पूर्ण रूप से नहीं दिखाई देता, चन्द्रमा की इस कला को **अमाकला** कहते हैं। यह **अमाकला** ही **अमावस्या** की तिथि होती है।

इसके ठीक विपरीत पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ चंद्रमा जब पृथ्वी से सूर्य की विपरीत दिशा में होता है, पृथ्वी बीच में होती है, तब पृथ्वी से दिखने वाला चंद्र गोलार्ध प्रकाश में होता है। यही पूर्णिमाकला होती है, इसे ही **पूर्णमासी** कहते हैं। यहाँ यह भी समझना चाहिए कि सूर्य की आकर्षण शक्ति से पृथ्वी का टूटा हुआ जो भाग, दूर गये हुए चन्द्रमा के रूप में स्थित है, उसमें पृथ्वी से खण्डित पृथ्वी से उखड़ा हुआ भाग ही पृथ्वी से सदैव सम्मुख होता है। पृथ्वी से उखड़ने के समय उखड़ा हुआ भाग स्वाभाविक रूप से ऊँचे-नीचे विशाल गड्ढों से युक्त है। पृथ्वी से दिखने वाला यह चन्द्रमा के गोलार्ध में बड़े-बड़े गड्ढों से युक्त भाग ही पूर्णिमा तिथि में पूर्णचन्द्र दर्शन में हल्की कालिमा के रूप में दिखाई देता है जिसका विस्तार से वर्णन चन्द्रोत्पत्ति प्रकरण में किया जा चुका है।

पृथ्वी से प्रत्यक्ष सामने, पृथ्वी से टूटा हुआ, चन्द्रमा का गोलार्ध पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे चन्द्रमा की स्थिति में निरन्तर हो रहे परिवर्तन के कारण क्रमशः भिन्न-भिन्न कोणान्तरों में पहुँचने के कारण पृथ्वी से विभिन्न मात्रा में दिखाई देता है। पूर्णिमा तिथि से वह क्रमशः प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा क्षीण होता हुआ अमावस्या को पूर्णरूप से नहीं दिखता। इसी प्रकार प्रतिरात्रि क्रमशः अमावस्या से आगे बढ़ता हुआ थोड़ा-थोड़ा दिखने से प्रारम्भ कर प्रतिरात्रि बढ़ता हुआ अमावस्या से लगभग १५वें दिन पूर्णता को प्राप्त कर पूर्णिमाकला से युक्त पूर्णिमा तिथि बनाता है।

जब चन्द्रमा भूमि की परिक्रमा करता हुआ, भूमि और सूर्य के बीच में प्राप्त होता है, तब पृथ्वी से प्रत्यक्ष दिखने वाला चन्द्रमा का गोलार्ध, सूर्य सम्मूख गोलार्ध का पृष्ठ भाग होता है। इसलिए पूर्ण रूप से अंधकार में होता है। सूर्य की किरणें सीधी रेखा में चलती हैं। इसलिए वे सूर्य की तरफ के गोलार्ध को ही प्रकाशित करती हैं। उसके विपरीत गोलार्ध में निशा होती

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। इसलिए इस स्थिति में चन्द्रमा का पृथ्वी के सम्मुख दिखने वाला निशायुक्त गोलार्ध नहीं दिखाई देता। इस समय चन्द्रमा सूर्य के समीप होता है, अतएव इसे अमावस्या कहते हैं। जैसा कि श्रुति कहती है—

"चन्द्रमा वा अमावस्यायामादित्यमनुप्रविशति।[१]"

निश्चय ही चन्द्रमा अमावस्या को आदित्य-सूर्य के मुख में प्रविष्ट हो जाता है।

"अमावस्यायां सः चन्द्रमा अस्य सूर्यस्य व्यात्तमापद्यते। सूर्यः तं चन्द्रमसं ग्रसित्वा उदेति। स चन्द्रमाः न पुरस्तान्न न पश्चाद्ददृशे।"

अमावस्या को वह चन्द्रमा इस सूर्य के फैले हुए मुख में चला जाता है। सूर्य उस चन्द्रमा को निगल कर उदित होता है। इसलिए वह चन्द्रमा न सामने से और न ही पीछे से दिखाई देता है।

मीमांसा– सूर्य चन्द्रमा से हजारों गुना बड़ा है। जब चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ सूर्य और पृथ्वी के बीच में आता है, तब सूर्य के अत्यधिक बड़ा होने के कारण सूर्य की सीधी और तीरछी चलने वाली किरणों से पृथ्वी से दूर होने से पृथ्वी तक उसकी छाया भी नहीं पड़ती, अथवा कुछ नजदीक होने पर जितने अंश में पृथ्वी पर उसकी छाया पड़ती है, पृथ्वी के उस भाग में **अमावस्या की तिथि पर सूर्य ग्रहण** दिखाई देता है।

इसलिए सूर्यग्रहण हमेशा अमावस्या को और चंद्रग्रहण पूर्णिमा को होता है

१०-चक्र या वृत्त को मापने का कोणात्मक परिमाण

वेद में वृत्त के केन्द्र से परिधि को कोणात्मक ३६० विभागों में बाँटा गया है। इसे ही अंश कहा जाता है। पुनः उस एक अंश को ६० भागों में विभक्त करने पर एक भाग को कला कहा जाता है। पुनः उस कला के एक भाग को ६० भागों में बाँटने पर एक भाग को विकला कहा जाता है। उसे अंकों में इस प्रकार जानना चाहिए—

१ वृत्त या चक्र = ३६०° अंश

---

१. ऐतरेय ब्रा.८/२८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१ अंश = ६०' कला

१' कला = ६०'' विकला

मध्यकालीन ज्यातिषियों ने वृत्त या चक्र के समान कोणात्मक १२ विभाग किये और उनके एक-एक भाग को राशि कहा। चूँकि वृत्त ३६०° अंश का होता है, इसलिए एक राशि ३० अंश। यहाँ क्रमशः अंश, कला और विकला के चिह्नों को, जो प्राचीन काल से ज्योतिष ग्रन्थों में प्रचलित हैं, शून्य के साथ लगाकर प्रदर्शित किया जा रहा है—

अंश का चिह्न = ०°

कला का चिह्न = ०'

विकला का चिह्न = ०''

११-चन्द्रमा की शुक्लपक्षीय कलायें एवं शुक्ल पक्ष

जैसा कि बताया जा चुका है कि, पृथ्वी की परिक्रमा चन्द्रमा २९.५ दिन में एक बार पूरी कर लेता है, जब चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के बीच में होता है, तो अमावस्या तिथि होती है। चन्द्रमा प्रत्येक अहोरात्र अर्थात् २४ घण्टे में लगभग १२ अंश मार्ग चलता है, इस द्वादश अंश मार्ग में लगने वाले समय को एक चान्द्र तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के परिक्रमण-मार्ग के द्वादश अंशात्मक ३० विभाग होते हैं। अमावस्या से अगली रात्रि तक चन्द्रमा भूमि की परिक्रमा करता हुआ अपने उस स्थान से बारह अंश आगे हटकर पूर्व दिशा में पहुँच जाता है। तो भी अत्यन्त थोड़ी तिरछी प्रकाश की किरणों से पृथ्वी से दिखने वाले चन्द्रभाग का स्पर्श होने पर भी चन्द्रमा नहीं दिखता। क्योंकि सूर्यास्त काल का अनुवर्तन करता हुआ वह किञ्चित् प्रकाश स्पर्शित चन्द्रांश सूर्य के अस्त होने के साथ शीघ्र ही अस्त हो जाता है। अमावस्या से दूसरी रात्रि में चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य की मध्यवर्ती काल्पनिक रेखा से २४ अंश पूर्व दिशा में आगे चला जाता है तब उस रात्रि में लोगों को चन्द्रमा सायं काल पश्चिम दक्षिण के कोने पर सूर्य की किरणों से प्रकाशित हुआ, सूर्य की दिशा में खण्डित वृत्ताकृति के सातवें अंश के बराबर दिखाई पड़ता है। उस दिन भी दैनिक गति के कारण से पृथ्वी सूर्य की मध्यवर्ती काल्पनिक ऋजुरेखा से अधिक दूर न गये हुए होने के कारण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शीघ्र ही अस्त हो जाता है। इस प्रकार से प्रत्येक रात्रि में चन्द्रमा अपनी पूर्व रात्रि से १२ अंश पूर्व में जाता हुआ काल्पनिक ऋजुरेखा से कोणान्तर में जैसे-जैसे दूर जाता है वैसे-वैसे ही पृथ्वी से दिखने वाला चन्द्रमा का गोलार्ध प्रति रात्रि अधिकाधिक प्रकाशित होता है। सप्तमी या अष्टमी रात्रि में जब कोणान्तर ९० अंश हो जाता है, तब पृथ्वी के सम्मुख स्थित चन्द्र गोलार्ध का आधा भाग मध्याकाश में प्रकाशित हुआ सायं काल से ही दिखता है, और पश्चिम दिशा में गति करता हुआ, मध्यरात्रि पश्चिम में अस्त होता है। यह शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि होती है। पुनः प्रत्येक अहोरात्र को १२ अंश आगे बढ़ता हुआ जब अमा से कोणान्तर १८० अंश हो जाता है जो अमा से १५वें दिन पड़ता है, उस रात्रि पृथ्वी से दिखने वाला सम्पूर्ण चन्द्र गोलार्ध सूर्य की किरणों के सीधे सामने होने के कारण, सम्पूर्ण प्रकाशित होता है। यही चन्द्रमा की **पूर्णिमाकला** होती है, इसे ही पूर्णमासी तिथि कहते हैं। चूँकि अमावस्या के बाद होने वाली प्रत्येक रात्रि, चन्द्रमा के प्रकाशितांश दर्शन से शुरू होती है। इसलिए **अमावस्या के बाद प्रतिप्रदा से लेकर पूर्णिमा तक के पक्ष को शुक्ल पक्ष कहा जाता है।**

१२-चन्द्रमा की कृष्णपक्षीय कलायें और कृष्णपक्ष

पूर्णिमा कला के उपरान्त पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ चन्द्रमा, प्रति रात्रि १२ अंश कोणान्तर में क्षीण होता है। क्योंकि चन्द्रमा प्रति रात्रि पूर्णिमा तिथि की काल्पनिक ऋजु रेखा से १२ अंश पश्चिम चला जाता है, तदनुसार ही चन्द्रमा की कला भी पूर्व दिशा में क्षीण हो जाती है। अर्थात् पृथ्वी के सम्मुख स्थित चन्द्र गोलार्ध का १/१४ अंश पूर्व दिशा में नहीं प्रकाशित होता। प्रत्येक रात्रि को उसी प्रकार क्रमशः पूर्व दिशा में क्षीण होता हुआ चन्द्रमा उसी प्रकार विलम्ब से उदित होता है। क्रमशः प्रतिदिन पूर्णिमा की काल्पनिक ऋजु रेखा से पश्चिम बढ़ते हुए चन्द्रमा का कोणान्तर जब ९० अंश पर पहुँचता है तो उस पूर्णिमा के बाद आने वाली ७वीं या ८वीं रात्रि में चन्द्रमा मध्य रात्रि को आधा क्षीण हुआ उदित होता है। यह कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि होती है। इसी प्रकार जब चन्द्रमा पूर्णिमा तिथि की काल्पनिक ऋजुरेखा से १६८ अंश चलकर १३वीं या १४वीं रात्रि को सूर्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और पृथ्वी की सीधी काल्पनिक रेखा में आने से मात्र १२अंश दूर रह जाता है, तब यह कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि होती है। इस रात्रि को चन्द्रमा प्रातः सूर्योदय से थोड़ा पूर्व खण्डाकार पश्चिम दिशा में उदित होकर सूर्योदय के साथ ही अस्त होता है। चूँकि पूर्णिमा तिथि के बाद चन्द्रमा प्रत्येक रात्रि में रात्रि आरम्भ होने के पश्चात् उदित होता है, और क्रमशः प्रति रात्रि विलम्ब से उदित होता हुआ क्षीण भी होता जाता है। इस प्रकार पूर्णिमा के बाद अंधकार से रात्रि के आरंभ होने के कारण अमावस्या तक के इस पक्ष को **कृष्णपक्ष** कहते हैं।

इस सम्बंध में श्रुतियाँ इस प्रकार हैं—

"अथो चन्द्रमा वै भान्तः पञ्चदशः स च पञ्चदशाहान्यापूर्यते पञ्चदशापक्षीयते तद्यत्तमाह भान्त इति भाति हि चन्द्रमाः।[१]"

निश्चय ही चन्द्रमा पञ्चदश तिथियों में रात्रि के आरम्भ से प्रकाशित होता है। वह पञ्चदश दिनों तक प्रतिदिन आपूरित होता हुआ पञ्चदशवीं रात्रि को पूर्णता को प्राप्त होता है। इसी प्रकार पूर्णता को प्राप्त पूर्णिमा से प्रतिदिन क्षीण होता हुआ पञ्चदशवें दिन की रात्रि को पूर्णरूप से क्षीण होकर अमावस्या तिथि को नहीं दिखता है। उसे ही यह कहते हैं कि प्रतिदिन नव-नव रूपों में चन्द्रमा प्रकाशित होता है।

"चन्द्रमा वै पञ्चदशः। एष हि पञ्चदश्यामपक्षीयते पञ्चदश्यामापूर्यते।[२]"

चन्द्रमा निश्चय ही पञ्चदश तिथियों वाला है, यह प्रतिदिन क्रमशः क्षीण होता हुआ पञ्चदशवीं तिथि को पूर्ण रूप से क्षीण होकर नहीं दिखता। इसके बाद इसी प्रकार क्रमशः प्रतिदिन बढ़ता हुआ पञ्चदशवीं तिथि को पूर्ण होता है।

"षोडशकलो वै चन्द्रमाः।[३]"

निश्चय ही चन्द्रमा षोडश कलाओं वाला है।

मीमांसा– वह इस प्रकार कि प्रतिपदा से लेकर चतुर्दशी तक १४ कलायें एक अमा कला और एक पूर्णिमा कला इस प्रकार कुल १६ कलायें होती हैं।

१. शतपथ ब्रा.८/४/१/१०। २. तैतरीय ब्रा.१/५/१०/५। ३. षड्विंस ब्रा. ४/६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"चन्द्रमा वै जायते पुनः।[१]"

निश्चय ही चन्द्रमा पुनः उत्पन्न होता है।

मीमांसा– निश्चय ही चन्द्रमा पूर्णिमा तिथि से क्षीण होता हुआ अमावस्या में पूर्ण विलीन हो जाता है, तदुपरान्त अगले दिन रात्रि के आरम्भ में पुनः उत्पन्न होता है।

"चन्द्रमा द्विपात्तस्य पूर्वपक्षापरपक्षौ पादौ।[२]"

द्विपाद चन्द्रमा के पूर्वपक्ष और अपरपक्ष– ये दो पाद हैं।

"रात्रिर्वै चंन्द्रमाः।[३]"

"निश्चय ही रात्रि ही चन्द्रमा है।"

मीमांसा– चन्द्रमा का प्रकाश रात्रि में ही दिखता है। इसलिए चन्द्र कलाओं का महत्व और उनका परिगणन रात्रि के चन्द्र प्रकाश ज्ञान के लिए ही किया गया है। इससे यह भी स्पष्ट है कि, श्रुति यहाँ यह तथ्य स्पष्ट कर दे रही है कि, चन्द्रकलाओं से ऋतुओं के ज्ञान का कोई सम्बंध नहीं है। रात्रि का परिगणन चन्द्रकलाओं से ही करना चाहिए। इसीलिए चन्द्रप्रकाश से प्रारम्भ होने वाली रात्रि को शुक्ल पक्ष और चन्द्रोदय से रहित प्रारम्भ होने वाली रात्रि को कृष्ण पक्ष कहते हैं।

चान्द्रमास– इस प्रकार पूर्णिमा से पूर्णिमा पर्यन्त चन्द्रमा द्वारा पृथ्वी की, की गयी एक पूर्ण परिक्रमा को एक चान्द्रमास कहते हैं। इसलिए पूर्णिमा तिथि को एक चान्द्रमास पूर्ण होने के कारण पूर्णमासी तिथि कहते हैं। इस परिगणन का दूसरा प्रकार यह है कि, अमावस्या कला के दूसरे दिन से अर्थात् शुक्ल प्रतिपदा से मास का आरम्भ कर अमावस्या तिथि को मास की पूर्णता करते हैं। इस प्रकार चान्द्र पूर्णिमान्त और अमान्तमास प्रचलित हैं।

---

१. तैतरीय ब्रा.३/९/५/४। २. गोपथ ब्रा.पूर्व भाग २/८।
३. शतपथ ब्रा.१२/७/४/४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

षष्ठम अध्याय

नक्षत्र और ग्रह

रात्रि में जहाँ तक आकाश दिखाई पड़ता है वहाँ तक इस अनन्त आकाश में अनगिनत छोटे-बड़े, धीमे-तेज प्रकाश बिन्दु दिखाई पड़ते हैं। सामान्य जन उन सभी को नक्षत्र कहते हैं, किन्तु वे सभी प्रकाश बिन्दु नक्षत्र नहीं हैं। उनमें बहुत-से नक्षत्रों के बीच में अनेक ग्रह और उपग्रह भी हैं। ऋषियों और ज्योर्तिविदों ने ग्रह एवं नक्षत्र का भेद बतलाया है। तदनुसार ही उनका नक्षत्र और ग्रह नामकरण किया गया है। वह इस प्रकार—

१. नक्षत्र— 'यं न क्षीयते तं नक्षत्रम्' जो क्षीण नहीं होते हैं उनको नक्षत्र कहते हैं। **णक्षगतौ**[१] धातु से **'अमिनक्षियजिवधिपतिभ्योऽत्रन्'** इस उणादि सूत्र से अत्रन् प्रत्यय करके नक्षत्र शब्द बनता है। **'न क्षीयते क्षरते वा इति नक्षत्रम्'** अर्थात् जो क्षीण नहीं होते अथवा क्षरित नहीं होते उन्हें नक्षत्र कहते हैं। इस विग्रह में नञ् और क्षत्र पद में समास करके **'न भ्राण्नपान्नवेदा...**[२]**'** सूत्र से नञ् का प्रकृतिभाव हो गया। **'नक्षत्राणि नक्षतेर्गतिकर्मणः**[३]**'** गति और कर्म से क्षीण न होने के कारण नक्षत्र कहे जाते हैं। इन्हीं तथ्यों को श्रुति भी प्रमाणित करती है—

> **"तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वं यन्न क्षियन्ति।**[४]**"**
>
> नक्षत्रों का वही नक्षत्रत्व है, कि वह क्षीण नहीं होते।
>
> **"न वै तानि क्षत्राणि अभूवन्निति तद्वै नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्।**[५]**"**
>
> निश्चय ही वे कभी क्षीण नहीं होते, यही है उन नक्षत्रों का नक्षत्रत्व।

---

१. पाणिनीय धातुपाठभ्वादि ४४२।
२. पाणिनीय अष्टाध्यायी ६/३/७५।
३. निरुक्त ३/२० ।
४. गोपथ उत्तर ब्रा.१/८।
५. शतपथ ब्रा.२/२/१९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२-ग्रह– उपादाने धातु से **"घञर्थे कविधानम्"** इस सूत्र से क प्रत्यय करके ग्रह शब्द बना है। **"गृहीताः इति ग्रहाः"** जो ग्रहण किये गये हैं, वे ग्रह हैं। **"येन गृहीताः सः ग्रही"** जिसके द्वारा ग्रहण किये गये हैं वह ग्रही है। जैसे अपनी आकर्षण शक्ति से सूर्य के द्वारा बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि आदि पिण्ड ग्रहण किये गये हैं इसीलिए ये सब बुधादिग्रह सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। चन्द्रमा पृथ्वी के द्वारा ग्रहण किया गया भी, सूर्य से गृहीत पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ, पृथ्वी के साथ सूर्य की परिक्रमा भी करता रहता है। इस प्रकार बुधादि सूर्य के ग्रह हैं, और सूर्य ग्रही है। चन्द्रमा पृथ्वी का ग्रह और सूर्य का उपग्रह है। ये सभी ग्रह सूर्य से ही क्षरित हुए हैं। इसलिए ये नक्षत्र नहीं हैं।

२-ग्रह एवं नक्षत्र की तुलनात्मक समीक्षा

१. ये **ग्रह** चल प्रकाश बिन्दु के रूप में सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। और **नक्षत्र** अचल हैं, इसीलिए नक्षत्र ग्रहों की गति के ज्ञापक हैं।

२. नक्षत्र सूर्य के समान स्वतंत्र पिण्ड हैं, वे आकार में कुछ सूर्य के समकक्ष और कुछ सूर्य से भी बहुत विशाल हैं। जैसा कि श्रुति कहती है–

"यथैवासौ सूर्य एवम् नक्षत्रम् तेषां नक्षत्राणाम् एष उद्यन्नेव वीर्यं क्षत्रमादत्त।[१]"

जिस प्रकार वह सूर्य है, उसी प्रकार नक्षत्र भी हैं, किन्तु उन नक्षत्रों के अति दूर होने के कारण यह सूर्य उदित होते ही उनके तेज और सामर्थ्य को ले लेता है। अर्थात् नक्षत्र बहुत दूर होने के कारण सूर्य की तरह ही विशाल और ज्योतिर्मान होने पर भी केवल रात्रि में टिमटिमाते हुए दिखाई देते हैं। सूर्योदय के साथ ही उनका अति दूर से रात्रि में टिमटिमाता दिख रहा प्रकाश भी, उनकी अपेक्षा काफी समीप से आ रहे सूर्य के प्रकाश में छिप जाता है। **'आसमन्तात प्रकाशते असौ आदित्यः'** सम्पूर्ण को प्रकाशित करने के कारण ही यह सूर्य आदित्य कहा जाता है।

ग्रह सूर्य मंडल के अंग रूप हैं। सूर्य से बहुत छोटे हैं, और सूर्य के अधीन हैं। जैसा कि श्रुति कहती है–**'अङ्गानि वै ग्रहाः[२]'** निश्चय ही ग्रह, ग्रही सूर्य के अंग ही हैं।

---

१. शतपथ ब्रा.२/१/२/१८। २. शतपथ ब्रा. ४/५/९/११।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३. नक्षत्र सूर्य के समान स्वयं प्रकाश रूप हैं, जैसा कि श्रुति कहती है–

"भाकुरयो ह नामैते भाँ हि नक्षत्राणि कुर्वन्ति।[१]"

ये नक्षत्र भा-प्रकाश करने वाले हैं, इसलिए प्रकाशरूप होने से इनका नाम 'भा' है।

"नक्षत्राणि वै रोचना दिवि।[२]"

निश्चय ही नक्षत्र ही द्युलोक में—अर्थात् आकाश में प्रकाशक हैं।

मीमांसा– जबकि ग्रह पृथ्वी के समान प्रकाशहीन पिण्ड हैं, ग्रहों के ऊपर जो सूर्य की किरणें पड़ती हैं, वे किरणें ही उन्हें प्रकाशित करती हैं। उन ग्रहों पर पड़ने वाली किरणें ही उनसे प्रत्यावर्तित होकर हमें उन ग्रहों को प्रदर्शित करती हैं। जैसा कि श्रुति स्पष्ट करती है—

"सूर्यस्यैव हि चन्द्रमसो रश्मयः।[३]"

निश्चय ही चन्द्रमा की रश्मियाँ सूर्य की ही हैं। अर्थात् वे सूर्य से निकलकर चन्द्रमा पर पड़ती हैं और चन्द्रमा से प्रत्यावर्तित होकर हमें चन्द्रमा की रश्मियों के रूप में दिखाई पड़ती हैं।

४. नक्षत्र सूर्य के समान ज्वलनशील पिण्ड हैं। जैसा कि श्रुति कहती है—

'नक्षत्राणां वा एतद्रूपं यल्लाजाः।[४]'

निश्चय ही जलता हुआ रूप नक्षत्रों का है।

जबकि ग्रह ऊष्णता से रहित हैं, उनमें शीतलता सूर्य की दूरी के क्रम से और सूर्य की किरणों के अभाव से होती है। उन ग्रहों में जो कुछ भी ऊष्णता प्राप्त होती है, वह सब की सब उन्हें सूर्य से प्राप्त होती है।

५. ग्रहों का प्रकाश स्थिर और उज्ज्वल दिखाई पड़ता है। इसके विपरीत स्वयं जल रहे नक्षत्रों का प्रकाश कम्पित होता हुआ दिखता है।

'ज्योतिर्वै नक्षत्राणि[५]'

निश्चय ही नक्षत्र ज्योति ही हैं।

---

१. शतपथ ब्रा.९/४/१/। २. यजुर्वेद मां. सं. २३/५।
३. शतपथ ब्रा.९/४/१/९। ४. शतपथ ब्रा.१३/२/१/५।
५. कौषीतकी ब्राह्मण २७/६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मीमांसा—यह सब तथ्य जो श्रुति प्रतिपादित हैं। इन्हें आधुनिक वैज्ञानिकों और ज्योतिषियों ने सूक्ष्मदर्शी यंत्र के द्वारा और अन्य विविध यंत्रों के द्वारा प्रत्यक्ष देखा है।

३-आवश्यक नक्षत्र ज्ञान

पृथ्वी की दो प्रकार की गति, सूर्य की स्थिति और खगोल में ग्रहों, उपग्रहों की गति के ज्ञान के लिए, सभी नक्षत्रों के ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। पृथ्वी के झुकाव के कारण, सूर्य खगोल में क्रान्ति वृत्ताकार पथ में, ८ अंश दूरी के अंतर से, क्रान्ति वृत्त के दोनों ओर वर्ष भर में चलता हुआ दिखाई देता है। इसलिए ग्रहों की स्थिति जानने के लिए, चन्द्रमा और सूर्य की स्थिति जानने के लिए एवं कालचक्र के सम्यक् ज्ञान के लिए इस १६ अंश व्यापिनी मेखला में, दिखाई पड़ने वाले नक्षत्रों के ज्ञान की ही आवश्यकता होती है। यह मेखला ही नक्षत्र मंडल, भ चक्र और मध्यकालीन ज्योतिषियों द्वारा राशि चक्र के नाम से कही जाती है।

वेदों में इस नक्षत्र मंडल अर्थात् भ चक्र को समानकोणात्मक २७ भागों में बाँटा गया है। इन २७ समान विभाग वाली दूरी में स्थित नक्षत्रों के द्वारा प्रतीत होने वाली आकृति के अनुसार ही वेदों में इनका नामकरण किया गया है। इन्ही समान विभाग में तारा युतियों के द्वारा कल्पित २७ आकृतिओं को ही श्रुतिओं में २७ नक्षत्र कहा गया है। २८ नक्षत्रों के नाम भी वेदों में दिये गये हैं। किन्तु परिगणना के समय २७ भागों को ही ग्रहण किया गया है, जैसा कि ब्राह्मण श्रुतियों में वर्णित है—

'सप्तविंशतिर्नक्षत्राणि।[१]'

२७ नक्षत्र हैं।

'तानि वा एतानि सप्तविंशतिर्नक्षत्राणि।[२]'

वही यह २७ नक्षत्र हैं, मध्य आकाश की १६ अंश चौड़ी वृत्ताकार विषुव मेखला में स्थित नक्षत्रों का २७ विभाग पूर्णतया वैदिक व्यवस्था में विद्यमान है। वेदों में ही वर्णित २८ नक्षत्रों का भी परिगणन इस नक्षत्र मेखला के भीतर ही किया जाता है। अट्ठाइसवाँ नक्षत्र अभिजित नक्षत्र है। उसके सहित नक्षत्र निम्नलिखित हैं—

---

१. ताण्डय.म.ब्रा.२३/२३/३ २. शतपथ ब्रा.१०/५/४/५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१. कृत्तिका, २. रोहिणी, ३. मृगशीर्ष या इन्वका, ४. आर्द्रा या बाहू, ५. पुनर्वसु, ६. तिष्य या पुष्य, ७. आश्लेषा, ८. मघा, ९. पूर्वा फल्गुनी, १०. उत्तरा फल्गुनी, ११. हस्त, १२. चित्रा, १३. स्वाति या निष्ट्या, १४. विशाखा, १५. अनुराधा, १६. ज्येष्ठा, १७. मूल या विचृति या मूलवर्हिणी, १८. पूर्व-अषाढ़ा, १९. उत्तर अषाढ़ा, २०. अभिजित, २१. श्रोणा या श्रवण, २२. श्रविष्ठा या धनिष्ठा, २३. शतभिषक्, २४. पूर्व प्रोष्ठपदा या पूर्व भाद्रपद, २५. उत्तर प्रोष्ठपदा या उत्तर भाद्रपद २६. रेवती, २७. अश्विनी, २८. भरणी।

वेद में इन २८ नक्षत्रों का वर्णन हम अगले अध्याय में करेंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सप्तम अध्याय

वेद में नक्षत्र

१-यजुर्वेद में नक्षत्रों का ज्ञान अथवा भगण विज्ञान

कालचक्र सम्बन्धी विज्ञान का मूल आधार नक्षत्रों का ज्ञान है। ऋग्वेद में विविध स्थलों में नक्षत्रों के नाम उल्लिखित हैं। नक्षत्रों के माध्यम से ही अपने अक्ष पर घूमती हुई और सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी का गतिविषयक ज्ञान भी होता है, जैसा कि यजुर्वेद में स्पष्ट है—

'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्[१]'

इन सभी मंत्रों में **'आलभते'** जो इस अध्याय के इस प्रकरण की समाप्ति पर आया है, अर्थ करने में जुड़ेगा अर्थात् मंत्र अर्थ करने के समय इस प्रकार होगा। **'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्-आलभते।'** अब मंत्रार्थ इस प्रकार होगा– कालचक्र के प्रकृष्ट ज्ञान के लिए राष्ट्राध्यक्ष राजा या उसके द्वारा इस कार्य के निमित्त स्थापित की गयी चयन समिति, नक्षत्र विज्ञान वेत्ता नक्षत्र द्रष्टा को, सम्पूर्ण राष्ट्र से प्राप्त कर नियुक्त करें।

'दिवे खलतिम्[२]'

दिन में दैनिक आर्तव ताप को जानने के लिए **खलतिम्**-खगोल वैज्ञानिक को सम्पूर्ण राष्ट्र से प्राप्त कर राष्ट्र व्यवस्था में नियुक्त करे। अर्थात् प्रतिभा परीक्षण के द्वारा राष्ट्राध्यक्ष या उसके द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त सभा राष्ट्र व्यवस्था में ऐसे खगोल वैज्ञानिकों को नियुक्त करें।

''सूर्याय हर्यक्षम्[३]''

सूर्य के विज्ञान को जानने के लिए राष्ट्राध्यक्ष राजा सूर्य की किरणों के

---

१. यजुर्वेद ३०/१०। २. यजुर्वेद ३०/२१।
३. यजुर्वेद ३०/२१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दोष के प्रतिरोधक हरितवर्णात्मक आँखों के रक्षण में समर्थ यंत्र विज्ञान वेत्ताओं को प्रतिभा परीक्षण के द्वारा राष्ट्र व्यवस्था में नियुक्त करें।

'नक्षत्रेभ्य किर्मिरम्[१]'

नक्षत्रों की स्थिति को जानने के लिए किरणों के ज्ञाता अंतरिक्ष वैज्ञानिकों को प्रतिभा-परीक्षण के द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्र से प्राप्त कर राष्ट्र व्यवस्था में नियुक्त करें। अर्थात् प्रतिभा परीक्षण के द्वारा राष्ट्राध्यक्ष या उसके द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त सभा नक्षत्र वेधी यंत्रों के द्वारा नक्षत्रों की सम्यक् स्थिति को जानने वाले नक्षत्र वेत्ता खगोल वैज्ञानिकों को राष्ट्र व्यवस्था में नियुक्त करें।

'चन्द्रमसे किलासम्[२]'

चन्द्रमा की स्थिति, चन्द्रमा की कलाओं, और चन्द्र सूर्य ग्रहण को जानने के लिए चन्द्र विज्ञान वेत्ताओं को प्रतिभा परीक्षण के द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्र से चयनित कर राष्ट्र व्यवस्था में राष्ट्राध्यक्ष राजा या तदर्थ सभा नियुक्त करे।

अनन्त आकाश में अनन्त नक्षत्र हैं जैसा कि श्रुति कहती है—

''यावन्त्येतानि नक्षत्राणि तावन्तो लोमगर्ता यावन्तो लोमगर्तास्तावन्तः सहस्रसंवत्सरस्य मुहूर्ताः।''

जितने ये आकाश में नक्षत्र हैं, उतने शरीर में रोयें हैं। अर्थात् जिस प्रकार से शरीर में रोयें अनगिनत हैं, अनन्त हैं, उसी प्रकार आकाश में नक्षत्र अनगिनत हैं, अनन्त हैं। जैसे शरीर के रोवों का परिगणन सम्भव नहीं, वैसे ही अनन्त आकाश के अनगिनत नक्षत्रों का परिगणन सम्भव नहीं। जितने शरीर में रोयें हैं, उतने हजार संवत्सर के मुहूर्त हैं।

मीमांसा—जब शरीर के रोवों का परिगणन ही संभव नहीं है तो उतने संवत्सरों की परिगणना कैसे संभव हो सकती है और फिर उन संवत्सरों की मुहूर्तों की परिगणना की कल्पना भी नहीं हो सकती। जिस प्रकार यह परिगणना असम्भव है उसी प्रकार आकाश में स्थित नक्षत्रों के परिगणन की कल्पना भी असम्भव है।

---

१. यजुर्वेद ३०/२१। २. यजुर्वेद ३०/२१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२-अथर्ववेद में नक्षत्रों का वर्णन

नक्षत्राणि अथर्ववेद सूक्त १९/७, ऋषिः-गार्ग्यः, देवता-नक्षत्राणि–

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
तुर्मिशे सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम्।। १।।

चित्राणि- चित्र-विचित्र अनेक प्रकार के, **साकं दिवि रोचनानि-**साथ साथ द्युलोक में प्रकाशित होने वाले, **सरीसृपाणि-** आकाश में सरकते हुए से सदा गतिशील दिखने वाले, **भुवने जवानि-**भुवन-ब्रह्माण्ड में वेगवान्, **अ-हानि-**कभी भी नष्ट न हाने वाले, **तुर्मिशं सुमतिं इच्छमानः** –अनिष्टनाशक उत्तम बुद्धि की इच्छा करता हुआ, मैं **नाकम्** – स्वर्गचारी अर्थात् आकाश में चलने वाले नक्षत्रों की, **गीर्भिः सपर्यामि–** अपनी वाणियों से सपर्या करता हूँ अर्थात् स्तुतिपूर्वक शरणापन्न होता हूँ।

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे।।२।।

अग्ने– हे अग्ने-परमात्मन्!, **कृत्तिका रोहिणी च सुहम् मे अस्तु-** कृत्तिका और रोहिणी मेरे लिए विनम्रता देने वाले हों, **मृगशिरः भद्रं मे अस्तु** मृगशिर नक्षत्र मेरे कल्याण के लिए हो, **आर्द्रा शं मे अस्तु** - आर्द्रा नक्षत्र मेरे लिए शान्ति देने वाला हो, **पुनर्वसु सूनृता मे अस्तु** - पुनर्वसु नक्षत्र मेरे लिए उत्तम सत् वाक्शक्ति देनेवाला हो, **पुष्यः चारु मे अस्तु-** पुष्य नक्षत्र मेरे लिए उत्तम हो, **आश्लेषा भानुः मे अस्तु** - आश्लेषा नक्षत्र मेरे लिए सूर्य के समान प्रकाशक हो, **मघा अयनं मे अस्तु** – मघा नक्षत्र मेरे लिए मार्ग देने वाला हो।

पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम्।।३।।

पूर्वा फल्गुन्यौ पुण्यं मे अस्तु–पूर्वा फाल्गुनी के दोनों नक्षत्र मेरे लिए पुण्यकारक हों, **अत्र हस्तः चित्रा शिवा मे अस्तु–**यहाँ हस्त और चित्रा मेरे लिए कल्याणकारी हों, **स्वाति सुखः मे अस्तु–**स्वाती नक्षत्र मेरे लिए सुखदायी हो, **राधे विशाखे सुहवा मे अस्तु–**हे राधा और विशाखा तुम दोनों मेरे लिए उत्तम विनम्रता प्रदान करने वाले होवो, **अनुराधा ज्येष्ठा**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मूलं नक्षत्रं अ-रिष्ट मे अस्तु—अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल ये नक्षत्र मेरे लिए विनाशक न हों।

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम्।४।।

पूर्वा अषाढ़ा मे अन्न रासतां- पूर्वा अषाढ़ा नक्षत्र मेरे लिए अन्न देवे, **उत्तरा देवी उर्ज आ वहन्तु**- उत्तरा अषाढ़ा नक्षत्र उत्तम बल देवे, **अभिजित् मे पुण्यं रासतां एव**- अभिजित् नक्षत्र मुझे पुण्य ही देवे, **श्रवणः श्रविष्ठाः सुपुष्टि कुर्वतां**- श्रवण और श्रविष्ठा धनिष्ठा मेरे लिए उत्तम पुष्टि देवें।

मीमांसा- यहाँ अभिजित् नक्षत्र के प्रति प्रार्थना करते हुए यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह अभिजित् नक्षत्र मुझे पुण्य ही देवे **पुण्यमेव रासतां**। जिस प्रकार से केवल अभिजित् के लिए 'पुण्यं एव' कहा गया है उस प्रकार किसी अन्य नक्षत्र के प्रति की गयी प्रार्थना में नहीं कहा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मूलतः यह नक्षत्र पुण्यकाल के रूप में ही मंत्र में प्रयुक्त है। नक्षत्र मंडल के २७ समान विभागों में इसका अलग से परिगणन नहीं किया जाता है।

आ मे महच्छतामिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु।। ५।।

महत् शतभिषक् – बड़ा शतभिषक् नक्षत्र, **मे वरीयः आ**-मेरे लिए श्रेष्ठता लावे, **द्वया प्रोष्ठपदा मे सुशर्म आ**- दोनों प्रोष्ठपदा भाद्रपद नक्षत्र मुझे उत्तम आवास से सम्पन्न करें, **रेवती अश्वयुजौ च मे भगं आ** - रेवती और अश्युज अश्विनी नक्षत्र मेरे लिए ऐश्वर्य लावें, और **भरण्यः मे रयिं आ वहन्तु**- भरणी नक्षत्र मेरे लिए सम्पत्ति ले आवे।

नक्षत्राणि अथर्ववेद सूक्त १९/८, ऋषिः-गार्ग्यः, देवता-नक्षत्राणि, ब्रह्मणस्पति–

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु।।१।।

यानि नक्षत्राणि- जो नक्षत्र, **दिवि अन्तरिक्षे**- द्युलोक में, अन्तरिक्ष में, **अप्सु भूमौ**- जलो में, भूमि पर, **यानि नगेषु दिक्षु**- जो पर्वतों पर तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिशाओं में हैं, **चन्द्रमा यानि प्रकल्ययन् एति–** चन्द्रमा जिनके साथ चलता हुआ दिखता है। **सर्वाणि एतानि मम शिवानि सन्तु–** ये सभी नक्षत्र मेरे लिए कल्याणकारी हों,

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं च भजन्तु मे।
योगं प्र पद्ये क्षेम च क्षेम प्र पद्येयोगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु।।२।।

अष्टाविंशानि-अट्ठाईस नक्षत्र, **शिवानि शग्मानि**-कल्याणकारी और सुखदायी हों, **मे सह योगं भजन्तु च**-और मेरे साथ योग प्राप्त करें, **योगं प्र पद्ये**-अच्छी तरह योग प्राप्त हो, **क्षेमं प्र पद्ये**-अच्छी तरह क्षेम प्राप्त हो, **क्षेमं च प्र पद्ये योगं च**-और इस प्रकार भलीभाँति क्षेम और योग प्राप्त हो, **अहोरात्राभ्यां नमः अस्तु-** दिन और रात्रि के लिए मैं नमन करता हूँ।

स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुन मे अस्तु।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन।।३।।

मे सु-अस्तितं- मेरे लिए अस्तकाल सुन्दर शुभ हो, **सुप्रभातः–** सुन्दर प्रात:काल हो, **सुसायं-** सुन्दर सायं काल हो, **सुदिवं-** दिन सुन्दर हो, **सुमृगं-** पशु सुखकारक हों, **सुशकुनं मे अस्तु-** मेरे लिए पक्षी सुन्दर शुभ हों, **सुहवं स्वस्ति-** मेरी विनम्रता कल्याणकारी हो, **अमर्त्यं गत्वा-** अमरत्व को प्राप्त होकर, पुनः सब तरफ से आनन्दित होते हुए, **आ अय**-आओ।

अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम्।
सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान्परा तान्सवितः सुव।। ४।।

सवितः – हे सविता– हे सबके प्रेरक परमात्मन्, **अनुहवं-** स्पर्धा, **परिहवं-** संघर्ष, **परिवादं-** निंदा, **परिक्षवं-** घृणा या छींक आदि, **सर्वैः मे रिक्त कुंभान् –** इन सब से मेरे घड़े खाली रहें, **तान् परा सुव–** उन सब स्पर्धा, संघर्ष, निन्दा, घृणा आदि सबको मुझसे दूर करें।

अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम्।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि महताम्।।५।।

अपपापं परिक्षवं- पाप और छींक दूर हो, **पुण्यं क्षवं मक्षीमहि-** पुण्यकारक अन्न हम भक्षण करेंगे, **पाप-** हे पाप!, **शिवा पुण्यगः च-** कल्याण करने और पुण्य मार्ग में बाधक, **ते नसिकां अभि मेहतां**-तेरी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नाक को चारों तरफ से मेहित करें, अर्थात् तेरा अपमान करते हुए परित्याग करें।

इमा या ब्राह्मणस्पतेविषूचीर्वात ईरते।
यध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि।। ६।।

ब्रह्मणस्पते इन्द्र - हे ज्ञानपते परमात्मन्!, **इमाः याः विषूचीः** – जो इन नाना दिशाओं में, **वातः ईरते** - वायु चलती है, **ताः सध्रीचीः कृत्वा**- उनको योग्य मार्ग से चलने वाला करके, **मह्यं शिवतमाः कृधि**- मेरे लिए अतिशय कल्याणकारी करें।

स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु।। ७।।

नः स्वस्ति अस्तु- हमारा कल्याण हो, **नः अभयं अस्तु**- हमें अभय प्राप्त हो, **अहोरात्राभ्यां नमः अस्तु**- दिन और रात्रि के लिए नमस्कार हो।

३-कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता में नक्षत्र वर्णन

[१]इन नक्षत्रों का वर्णन इस प्रकार है—

कृत्तिका नक्षत्रमग्निर्देवताऽग्ने रुचः स्थ प्रजापतेर्धातुः।
सोमस्यर्चे त्वा रुचे त्वा द्युते त्वा भासे त्वा ज्योतिष त्वा।।१।।

कृत्तिका नक्षत्र का अग्नि देवता। हे अग्ने! यह नक्षत्र प्रजापति धाता के द्वारा स्थापित अपनी दीप्ति में स्थित रहे। यह तुम सब मनुष्यों/प्राणियों के लिए चन्द्रमा को दिखाने वाला, तुम सबको द्योतित करने वाला, तुम सबको प्रतिभा-सम्पन्न बनाने वाला, तुम सबको सूक्ष्म ज्ञान देने वाला हो।

मीमांसा-इस मंत्र की प्रथम पंक्ति में नक्षत्र के देवता को सम्बोधित कर उससे प्रार्थना की गयी है कि **"यह नक्षत्र प्रजापति धाता के द्वारा स्थापित अपनी दीप्ति में स्थित रहे।"** इतना अंश सभी नक्षत्रों के देवता के सम्बोधन के साथ जुड़ता रहेगा। और साथ ही सम्पूर्ण द्वितीय पंक्ति भी सभी नक्षत्रों के वर्णन में अनुवर्तित होती रहेगी। तदनुसार ही आगे के सभी नक्षत्रों के अर्थ में यह इतना अर्थ अनुवर्तित होगा—**"यह आप सब के लिए चन्द्रमा को दिखाने वाला, आपको द्योतित करने वाला, आपको प्रतिभा-सम्पन्न बनाने वाला, आपको सूक्ष्म ज्ञान देने वाला हो।"**

१. कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता ४/४/१०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता ॥२॥
मृगशीर्षं नक्षत्रं सोमो देवता ॥३॥
आर्द्रा नक्षत्रं रुद्रो देवता ॥४॥
पुनर्वसू नक्षत्रमदितिर्देवता ॥५॥

२ रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता– रोहिणी नक्षत्र का प्रजापति देवता। हे प्रजापते! यह नक्षत्र प्रजापति धाता के द्वारा स्थापित अपनी दीप्ति में स्थित रहे। यह आप सब के लिए चन्द्रमा को दिखाने वाला, आपको द्योतित करने वाला, आपको प्रतिभा सम्पन्न बनाने वाला, आपको सूक्ष्म ज्ञान देने वाला हो

३ मृगशीर्षं नक्षत्रं सोमो देवता– मृगशीर्ष नक्षत्र का सोम देवता। हे सोम! यह नक्षत्र...........

४ आर्द्रा नक्षत्रं रुद्रो देवता– आर्द्रा नक्षत्र का रुद्र देवता। हे रुद्र! यह नक्षत्र...........

५ पुनर्वसू नक्षत्रमदितिर्देवता– पूनर्वसू नक्षत्र का अदिति देवता। हे अदिते! यह नक्षत्र...........

तिष्यो नक्षत्रं बृहस्पतिर्देवता ॥६॥
आश्लेषा नक्षत्रं सर्पा देवता ॥७॥
मघा नक्षत्रं पितरो देवता ॥८॥
फल्गुनी नक्षत्रमर्यमा देवता ॥९॥
फल्गुनी नक्षत्रं भर्गो देवता ॥१०॥
हस्तो नक्षत्रं सविता देवता ॥११॥

६ तिष्यो नक्षत्रं बृहस्पतिर्देवता– तिष्य नक्षत्र का बृहस्पति देवता। हे बृहस्पते! यह नक्षत्र...........

७ आश्लेषा नक्षत्रं सर्पा देवता– आश्लेषा नक्षत्र का सर्पगण देवता। हे सर्पगण! यह नक्षत्र...........

८ मघा नक्षत्रं पितरो देवता– मघा नक्षत्र का पितर देवता। हे पितर! यह नक्षत्र...........

९ फल्गुनी नक्षत्रं मर्यमा देवता– पूर्व फल्गुनी नक्षत्र का अर्यमा देवता। हे अर्यमन! यह नक्षत्र.......

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१० फल्गुनी नक्षत्रं भर्गो देवता– उत्तर फल्गुनी नक्षत्र का भग देवता हे भग! यह नक्षत्र.......

११ हस्तो नक्षत्रं सविता देवता– हस्त नक्षत्र का सविता देवता। हे सविता! यह नक्षत्र...........

चित्रा नक्षत्रमिन्द्रो देवता ।।१२।।
स्वाती नक्षत्रं वायुर्देवता ।।१३।।
विशाखे नक्षत्रमिद्राग्नी देवता ।।१४।।
अनुराधा नक्षत्रं मित्रो देवता ।।१५।।

१२ चित्रा नक्षत्रमिन्द्रो देवता– चित्रा नक्षत्र का इन्द्र देवता। हे इन्द्र! यह नक्षत्र...........

१३ स्वाती नक्षत्रं वायुर्देवता– स्वाति नक्षत्र का वायु देवता। हे वायो! यह नक्षत्र...........

१४ विशाखे नक्षत्रमिद्राग्नी देवता– दोनों विशाखा नक्षत्र का क्रमशः इन्द्राग्नी देवता। हे इन्द्राग्नि! यह नक्षत्र.........

१५ अनुराधा नक्षत्रं मित्रो देवता– अनुराधा नक्षत्र का मित्र देवता। हे मित्र! यह नक्षत्र...........

रोहिणी नक्षत्रमिन्द्रोदेवता ।।१६।।
विचृतौ नक्षत्रं पितरो देवता ।।१७।।
अषाढ़ा नक्षत्रमापो देवता ।।१८।।
अषाढ़ा नक्षत्रं विश्वेदेवा देवता ।।१९।।

१६ रोहिणी नक्षत्रमिन्द्रोदेवता– रोहिणी ज्येष्ठा नक्षत्र का इन्द्र देवता। हे इन्द्र! यह नक्षत्र...........

१७ विचृतौ नक्षत्रं पितरो देवता– विचृति नक्षत्र का पितृ देवता। हे पितर! यह नक्षत्र...........

१८ अषाढ़ा नक्षत्रमापो देवता– अषाढ़ा नक्षत्र का जल का अधिष्ठाता आप वरुण देवता। हे आप! – हे वरुण! यह नक्षत्र...........

१९ अषाढ़ा नक्षत्रं विश्वेदेवा देवता– उत्तर अषाढ़ा नक्षत्र का विश्वेदेवा देवता। हे विश्वदेव! यह नक्षत्र...........

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रोणानक्षत्रं विष्णुर्देवता ॥२०॥
श्रविष्ठा नक्षत्रं वसवो देवता ॥२१॥
शतभिषङ्नक्षत्रमिन्द्रो देवता ॥२२॥
प्रोष्ठपदा नक्षत्रमज एकपाद्देवता॥२३॥

२० **श्रोणानक्षत्रं विष्णुर्देवता**– श्रोणा श्रवण नक्षत्र का विष्णु देवता। हे विष्णो! यह नक्षत्र...........

२१ **श्रविष्ठा नक्षत्रं वसवो देवता**– श्रविष्ठा नक्षत्र का वसुगण देवता। हे वसुगण! यह नक्षत्र...........

२२ **शतभिषङ्नक्षत्रमिन्द्रो देवता**– शतभिषा नक्षत्र का इन्द्र देवता। हे इन्द्र! यह नक्षत्र...........

२३ **प्रोष्ठपदा नक्षत्रमज एकपाद्देवता**– प्रोष्ठ पदा नक्षत्र का अज एकपाद देवता। हे अज, एक पाद! यह नक्षत्र...........

प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्वुध्नियो देवता॥२४॥
रेवती नक्षत्रं पूषा देवता ॥२५॥
अश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवता ॥२६॥
अपभरणी नक्षत्रं यमो देवता ॥२७॥

२४ **प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्वुध्नियो देवता**–प्रोष्ठपदा नक्षत्र का अहिर्वुध्निय देवता। हे अहिर्वुध्निय! यह नक्षत्र...........

२५ **रेवती नक्षत्रं पूषा देवता**– रेवती नक्षत्र का पूषा देवता। हे पूषन्! यह नक्षत्र...........

२६ **अश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवता**– अश्विनी नक्षत्र का अश्विनौ देवता। हे अश्विनौ! यह नक्षत्र...........

२७ **अपभरणी नक्षत्रं यमो देवता**– अपभरणी नक्षत्र का यम देवता। हे यम! यह नक्षत्र...........

"पूर्णापश्चाद्यन्ते देवा अदधुः।"

इस प्रकार आदि से अन्त तक देवताओं ने इन्हें धारण किया है।[1]

मीमांसा– चूँकि सम्पूर्ण नक्षत्र मंडल वृत्ताकार है, कोई भी वृत्त ३६० अंश का ही होता है। इस ३६० अंश के २७ समान विभागों को २७ नक्षत्र

१. तैतिरीयसंहिता ४/४/१०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कहा गया है। इन्हीं २७ नक्षत्रों में उन्नीसवें उत्तर अषाढ़ा नक्षत्र की चार घटी और श्रोणा या श्रवण नक्षत्र के प्रारम्भ की २५ घटी कुल २९ घटी का अभिजित् नक्षत्र होता है। लेकिन जब नक्षत्र मंडल के समान २७ विभाग करते हैं, तो इसे अलग से नहीं गिनते, यह उन्हीं में अन्तर्निहित होता है। इसी तथ्य को श्रुति स्पष्ट करती है—

सप्तविंशतिर्दिव्यानि नक्षत्राणि[1]

२७ दिव्य नक्षत्र हैं।

मीमांसा– यहाँ २७ दिव्य नक्षत्र कहकर यह स्पष्ट किया गया है कि काल परिगणना के लिए नक्षत्र मंडल के २७ विभाग ही किये गये हैं इसलिए वह दिव्य है।

संवत्सरस्य नक्षत्राणि प्रतिष्ठा[2]

नक्षत्र संवत्सर की प्रतिष्ठा हैं।

तानि वाऽ एतानि सप्तविंशतिर्नक्षत्राणि सप्तविंशतिः।
सप्तविंशतिर्होपनक्षत्राण्येकैकं नक्षत्रमनूपतिष्ठन्ते।[3]

वे यह निश्चय ही २७ नक्षत्र हैं। उन मुख्य नक्षत्रों के पीछे २७-२७ उपनक्षत्र एक-एक नक्षत्र के पश्चात् स्थित हैं। एक-एक नक्षत्र के पीछे क्रमशः उसके बाद वाले नक्षत्र, नक्षत्र मंडल में स्थित हैं।

मीमांसा– यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि मूलतः विभागात्मक नक्षत्र २७ ही हैं। उस एक-एक नक्षत्र विभाग में अनेक छोटे-छोटे नक्षत्र क्रमशः स्थित हैं। जिन्हें श्रुति ने यहाँ उपनक्षत्रों के नाम से कहा है। इन्हीं छोटे-छोटे नक्षत्रों के आधार पर बनने वाली काल्पनिक आकृतियों के दृष्टिगत इन नक्षत्रों का नामकरण किया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नक्षत्र मंडल को २७ समान विभागों में बाँटकर आकृति-कल्पित नामों से उनका नामकरण किया जाना वेदों की ही देन है। उन्हीं में उत्तर अषाढ़ा और श्रवण नक्षत्र के बीच में अभिजित् की उपस्थिति भी वेदों में ही स्पष्ट है। गणना के लिए उनके २७ विभागों को ही अधिक महत्व दिया गया है।

---

१. जैमिनीय ब्रा० ३/८६। २. तैतरीय ब्रा०३/११/१/१३।
३. शतपथ ब्रा० १०/५/४/५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४-वैदिक काल सम्बन्धी ज्योतिषीय वैज्ञानिकी अति महत्त्वपूर्ण तथ्य–

अथर्ववेद में और कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में नक्षत्रों का आरम्भ कृतिका नक्षत्र से किया गया है। ऋग्वेदीय मंत्रों से यह तथ्य स्पष्ट हो चुका है कि नक्षत्रों का संबंध नाक्षत्र पूर्णिमा से रखा गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया है कि वैदिक वर्ष का आरम्भ आदिविषुव अर्थात् उत्तरी गोलार्ध के वासंतिक विषुव से होता था। इससे यह तथ्य स्पष्ट हो रहा है कि अथर्ववेद और कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में जब कृतिका नक्षत्र पर चान्द्र पूर्णिमा हो रही थी, उस समय वासन्तिक आदिविषुव हो रहा था। जिस नक्षत्र पर पूर्णिमा होती है सूर्य ठीक उसके विपरीत नक्षत्र पर होते हैं, इससे यह स्पष्ट है कि उस समय सूर्य आदि विषुव पर अनुराधा नक्षत्र पर होते थे। जबकि वर्तमान में सूर्य उत्तर भाद्रपद नक्षत्र के ३ अंश २० कला पर आदिविषुव में होते हैं। इस प्रकार अनुराधा नक्षत्र से अब तक का विपरीत विचलन बराबर (१७ नक्षत्र×१३°२०')+(१३° २०'–३°२०') =२२६°४०'+१०° = २३६° ४०'=२३६.६७°

चूंकि ३६०° विचलन में वर्ष = २५८००

इसलिए २३६.६७° विचलन में वर्ष = $\frac{२५८०० \times २३६.६७}{३६०}$

= १६९६१.३५ वर्ष अर्थात् अथर्ववेद और कृष्णयजुर्वेद संहिता में यह पंक्तियां लिखने के समय से कम-से-कम १६९६१.३५ वर्ष बीत चुके हैं। इससे अधिक हो सकते हैं कम नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अष्टम अध्याय

मध्यकालीन ज्योतिष एवं ज्योर्तिविद महापुरुष

१-लगध और वेदांग ज्योतिष

वेदों में नक्षत्र मंडल का इन २७ विभागों के अतिरिक्त १२ राशि विभाग नहीं प्राप्त होता। वहाँ तो संवत्सर काल चक्र के द्वादश विभाग ऋतु परक है। जिनका विभाग मुख्य तीन नाभियों क्रमशः विषुव नाभि, उत्तर नाभि, और दक्षिण नाभि के आधार पर किया गया है। विषुव नाभि वर्ष में दो बार आती है। क्रमशः आदि विषुव नाभि, और मध्य विषुव नाभि, इस प्रकार इस काल चक्र के ऋतु चक्र विभाजन में यह चार नाभियाँ ही प्रमुख हैं। क्रमशः आदि विषुव नाभि, उत्तर नाभि, मध्य विषुव नाभि और दक्षिण नाभि। इनमें भी आदि विषुव नाभि और मध्य विषुव नाभि से छः-छः महीनों का अन्तराल श्रुतियों द्वारा स्पष्ट किया गया है। इन्हीं दोनों नाभियों से क्रमशः आदि विषुव नाभि से छः महीने उत्तरावर्त और मध्य विषुव नाभि से छः महीने दक्षिणावर्त के स्पष्ट किये गये हैं। किसी समय किसी आपात स्थिति में संवत्सर काल चक्र के इस तथ्यात्मक विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान और अयन गति के ज्ञान का गणित विलुप्त हो जाने के बाद हमारे महनीय विद्वानों ने उस वैदिक विज्ञान को यथावत प्राप्त करने का प्रयास निरन्तर जारी रखा।

विशुद्ध वैदिक काल चक्र को उसी रूप में प्राप्त करने के प्रयास में पहला महत्वपूर्ण नाम वेदांग ज्योतिष ग्रन्थ के प्रणेता लगध का है। उन्होंने अपने वेदांग ज्योतिष में उक्त २७ नक्षत्रों को थोड़े में याद रखने के लिए यह सूत्र दिया है—

"जौ द्रागः रवे श्वे ही रोषा चिन्मूषकूण्यः सूमाधानः। रे मृ घा स्वा पो जः कृप्योह ज्येष्ठा इत्यृक्षालिङ्गैः।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नक्षत्र मंडल या 'भ' चक्र वृत्ताकार होने से ३६०° अंश का होता है। उस 'भ' चक्र के २७ कोणात्मक समान विभाग ही २७ नक्षत्र कहे जाते हैं। इन विभागों का उन-उन विभागों में स्थित ताराओं से कल्पित होने वाली आकृति के आधार पर कृत्तिका आदि नामकरण किया गया है। अंश का २७ समान विभाग करने पर प्रत्येक विभाग १३°-२०' का होता है। पुनः इस एक-एक नक्षत्र के चार-चार समान विभाग किये गये हैं। जिन्हें नक्षत्र चरण कहा जाता है। प्रत्येक चरण ३°-२०' का होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण नक्षत्र मंडल १०८ चरण का हुआ। इन १०८ नक्षत्र चरणों के भीतर ही सब कुछ भ्रमण कर रहा है। इसी तथ्य के दृष्टिगत माला १०८ दानों की रखी जाती है।

२-लगध द्वारा नक्षत्र मंडल का द्वादश विभाग और उनके उत्तराधिकारियों द्वारा उसका राशि नामकरण

वेदांग ज्योतिष के प्रणेता लगध ने संवत्सर काल चक्र को उसी रूप में प्राप्त करने की दृष्टि से उक्त नक्षत्र मंडल जिसके वेदों में २७ विभाग प्राप्त थे, उसी को १२ विभाग में बाँटकर प्राप्त किया जा सकता है ऐसा विचार कर, उसके १२ विभाग किये। जिस समय उन्होंने इस नक्षत्र मंडल के १२ विभाग किये उस समय सूर्य जब दक्षिण नाभि पर पहुँचते थे। तब वह धनिष्ठा नक्षत्र पर दिखाई देते थे। लगध ने सूर्य के धनिष्ठा नक्षत्र पर दक्षिण नाभि होने को ही अपने इस विभाजन का आधार बनाया। जैसा कि उनके निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है—

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात्तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनं ह्युदक्।।[१]

जब चन्द्रमा और सूर्य एकत्र वासव (धनिष्ठा) नक्षत्र में प्राप्त होकर आकाश में आक्रमण करते हैं, उस समय युग, माघ (मास), शुक्ल (पक्ष) तपस् अर्थात् निरन्तर क्षीण हो रहे दिन का, क्षीण होना रुककर, बढ़ने का और उदगयन का आरम्भ होता है।

मीमांसा— जब चन्द्रमा अमावस्या तिथि पर सूर्य के साथ धनिष्ठा नक्षत्र पर होते हैं। तो उस चान्द्र मास की चान्द्र पूर्णिमा धनिष्ठा नक्षत्र के

१. वेदांग ज्योतिष ५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ठीक सम्मुख पड़ने वाले मघा नक्षत्र पर ही होगी। इसलिए इस चान्द्र मास का नाम चन्द्र पूर्णिमाश्रित माघ होगा। क्योंकि श्रुति में स्पष्ट है—"**अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः**[१]", अर्थात् नक्षत्रों के उपस्थ में अच्छी तरह चन्द्रमा को स्थापित किया। श्रुति में चान्द्र मासों का नाम नक्षत्र चन्द्र पूर्णिमाश्रित है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि, लगध ने जिस समय यह श्लोक लिखा उस समय धनिष्ठा नक्षत्र पर सूर्य दक्षिण नाभि पर पहुँच कर उत्तर नाभि की ओर गतिशील होते थे, जिसे उत्तरायण कहा जाता है। लगध के इस श्लोक में तपः का अर्थ घर्म अर्थात् घाम अर्थात् दिन के बढ़ने से है न की वैदिक तपमास से। क्योंकि आगे श्लोक में स्वयं उन्होंने तप के स्थान में घर्म का प्रयोग किया है। और महीनों के स्थान में चान्द्रमासों का ही उल्लेख किया है।

इसी तथ्य को आगे वह और स्पष्ट करते हैं—

प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा।।[२]

श्रविष्ठा के आरम्भ में सूर्य और चन्द्रमा 'उत्तर की ओर मुड़ते हैं और आश्लेषा के आधे पर दक्षिण की ओर सूर्य सर्वदा माघ और श्रावण मासों में क्रमशः उत्तर और दक्षिण की ओर मुड़ते हैं।

मीमांसा- यहाँ लगध ने अपने समय में आरम्भ हो रहे दोनों अयनों की स्थिति को स्पष्ट किया है। श्रविष्ठा नक्षत्र दक्षिण नाभि पर दिखने के साथ सूर्य की दक्षिण गति समाप्त होकर उत्तर की गति आरम्भ होती है। इसके ठीक विपरीत नक्षत्र मंडल के ठीक दूसरी ओर अर्थात् २७ नक्षत्रों का आधा १३.५ नक्षत्र जो आश्लेषा के आधे पर होता है पर उत्तर नाभि आ रही थी जहाँ से सूर्य की उत्तर गति समाप्त होकर दक्षिण गति प्रतीत होती थी। उस समय होने वाली पूर्णिमा आश्लेषा के उलट श्रवण नक्षत्र पर होने से यह चान्द्र श्रावण मास था। इस प्रकार लगध के समय में यह स्पष्ट है कि चान्द्र माघ मास में सूर्य के धनिष्ठा नक्षत्र पर दिखने पर उत्तरायण का आरम्भ और नाक्षत्र श्रावण मास के आश्लेषा नक्षत्र के आधे पर दक्षिणायन का आरम्भ होता था।

---

१. ऋग्वेद १०/८५/२। २. वेदांग ज्योतिष ७ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्त में लगध ने अपने इस तथ्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणे तौ विपर्यस्तौ षण्मुहूर्त्ययनेन तु।।[१]

(सूर्य के) उत्तर गति करने के साथ उदक (जल) के एक प्रस्थ के बराबर घर्म अर्थात् घाम अर्थात् धूप अर्थात् दिन की वृद्धि होती है। और छपा अर्थात् रात्रि का उतना ही ह्रास अर्थात् क्षय होता है। दक्षिणायन की स्थिति इसके विपरीत होती है। अयन में ६ मुहूर्त (वृद्धि होती है)

मीमांसा– लगध ने इसी उत्तरायण के आरम्भ होने से वर्ष का आरम्भ माना यद्यपि उनका यह मानना वेदानुकूल नहीं था। क्योंकि वेद उत्तरनाभि से चलते हुए ३ माह बाद जब सूर्य विषुव नाभि पर पहुँचते हैं, जिससे सम्पूर्ण पृथ्वी पर रात दिन बराबर हो जाता है। उस विषुव नाभि दिवस से वर्ष का आरम्भ मानते हैं। वेद सम्पूर्ण धरती पर समान दिन रात्रि वाले अहोरात्र को सम्पूर्ण धरती के प्राणियों के लिए महोत्सव मानते हैं। किन्तु लगध का लगाव उत्तरी गोलार्ध में अधिक होने के कारण उत्तरी गोलार्ध में दिन का क्षीण होना रुककर दिन के बढ़ने के क्रम को उत्तरी गोलार्ध के प्राणियों के लिए उत्कर्ष की ओर गतिमानता मानते हुए अपनी दृष्टि के अनुसार यह निर्णय किया। उन्होंने अपनी इसी भावना के प्रभाव में पूर्णिमान्त चान्द्र मासों की अपेक्षा अमान्त चान्द्रमासों को अधिक महत्व दिया।

इस प्रकार लगध ने वैदिक संवत्सर काल चक्र को प्राप्त करने के लिए, नक्षत्र मंडल के २७ के अतिरिक्त द्वादश विभाग भी किये। यद्यपि लगध ने इन द्वादश विभागों का स्वयं कोई राशि नामकरण नहीं किया है। किन्तु लगध के बाद उनकी परम्परा के अनुयायियों ने वेदों में किये गये नक्षत्रों के नामकरण की तरह से ही राशि नामकरण कर लेना सरल समझा और इस नक्षत्र मंडल का द्वादश मकरादि राशि नामकरण कर लिया। इन लगध के उत्तराधिकारी ज्योतिषियों को और लगध को भी अयन के विपरीत विचलन का बोध नहीं हो सका था। जो वैदिक ऋषियों को स्पष्ट था। यह अयन का विपरीत विचलन आधुनिक अंतरिक्ष वैज्ञानिकों के अनुसार

---

१. वेदांग ज्योतिष- ७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२५८०० वर्षों में सम्पूर्ण एक चक्र अर्थात् ३६०° घूम जाता है। इस अयन गणना से लगध का काल निम्नलिखित स्पष्ट होता है—

चूँकि लगध के समय में दक्षिण नाभि धनिष्ठा नक्षत्र पर होती थी, और वर्तमान में दक्षिण नाभि मूल नक्षत्र के ५° अंश ५५' कला पर होती है। इस प्रकार लगध के समय से अयन का विपरीत विचलन क्रमशः श्रवण नक्षत्र, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र और मूल नक्षत्र के ७° १५' तक हो चुका है। एक नक्षत्र का मान १३° २०' होता है। इसलिए ३ नक्षत्रों का मान बराबर १३° २०' × ३ = ४०°। इसमें मूल नक्षत्र के ५° ५५' को घटाने पर विपरीत विचलित हुआ मूल नक्षत्र का भाग बराबर १३°२०'– ५°५५' = ७°१५'। इसे जोड़ने पर विचलन हुआ ४०° + ७° १५'= ४७° १५' = ४७.२५°।

अब इसलिए ४७.२५° विचलन होने में लगा समय

$$= \frac{२५८०० \times ४७.२५}{३६०} = ३३८६.२५ \text{ वर्ष।}$$

इस नक्षत्र गणित से यह स्पष्ट है कि, लगध ने कम-से-कम ३३८७ वर्ष पहले अपने ग्रन्थ की रचना की थी। उसके कुछ समय बाद ही उनके उत्तराधिकारियों ने उनके द्वारा किये विभागों को मकरादि राशि नाम दिया। इन ऐतिहासिक दृष्टि से अप्रसिद्ध, अज्ञात ज्योतिषियों का सम्पर्क यूनानियों और बेबीलोनिया वालों से भी होने के कारण इन १२ मकरादि राशियों का व्यवहार वहाँ भी प्रचलित हुआ। इन अज्ञात ज्योतिषियों के सम्बन्ध में ज्ञापक वराहमिहिर द्वारा लिखित अपने से पूर्व के ज्योतिषियों के पाँच सिद्धांत ग्रन्थों का उल्लेख है। इन सभी ग्रन्थों में १२ राशियों का उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु लगध से आर्यभट्ट तक के लम्बे काल में लगध के उत्तराधिकारी ज्योतिषियों का कोई स्पष्ट इतिहास प्राप्त नहीं है।

३-आर्यभट्ट प्रथम-

लगध के बाद जिन प्रसिद्ध ज्योतिष विद्वान् के नाम सामने आते हैं, वे है वेदों में अत्यन्त श्रद्धा रखने वाले स्वनामधन्य **आर्यभट्ट**, जिन्होंने वेदों का अनुशीलन कर, नक्षत्रों का भी सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन कर इस वैदिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथ्य को बलपूर्वक घोषित किया कि, पृथ्वी चल रही है, सूर्य नहीं। दिन-रात और ऋतुओं के क्रम पृथ्वी की गति में गतिमान हैं। देखें उनका यह श्लोक—

अनुलोम गतिर्नौस्थः, पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्।।
आर्यभटीय गोलपाद।।९।।

हिन्दी– नाव में बैठकर नदी की धारा या हवा की अनुलोम दिशा में, जब स्वाभाविक रूप से नाव का वेग तीव्र होता है उस समय नदी के दोनों ओर स्थित अचल तट, और उन तटों पर स्थित अचल वृक्षादि विपरीत दिशा में जाते हुए जान पड़ते हैं। उसी प्रकार अचल नक्षत्र तारे भी लंका से पश्चिम की ओर जाते हुए दिखते हैं। क्योंकि हम सब अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती हुई पृथ्वी के साथ पश्चिम से पूर्व की ओर घूम रहे हैं। इस तथ्य को वह और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

उदयो यो लंकायां सोऽस्तमयः सवितुरेव सिद्धपुरे।
मध्यान्हो यवकोट्यां लोमकविषयेऽर्धरात्रं स्यात्।।
आर्यभटीय गोलपाद।।१३।।

हिन्दी– जो लंका में सूर्योदय है, वही सिद्धपुर में सूर्यास्त, वही यवकोटि में मध्याह्न, और वही लोमक राष्ट्र में अर्धरात्रि है।

मीमांसा– गोल पृथ्वी पर जहाँ लंका है। ठीक उसकी दूसरी तरफ १८०अंश पर सिद्धपुर। लंका से एक तरफ ९० अंश पर यवकोटि, तो दूसरी तरफ उतने ही अंश पर लोमकराष्ट्र। समझने के लिए ग्लोब पर चारों ओर क्रमशः लंका आदि इसी तरह लिखकर अंधेरे में दीपक के सामने रखकर ग्लोब को धीरे-धीरे घुमाते हुए देखो! घूमते ग्लोब के सामने प्रकाश में जैसे-जैसे लंका आना शुरू होगा, तो सिद्धपुर प्रकाश से अंधकार की ओर जा रहा होगा, यवकोटि दीपक के ठीक सामने, और दूसरी ओर लोमकराष्ट्र पूरी तरह अंधकार के मध्य होगा। जैसे दीपक के सामने घूमता ग्लोब, ठीक इसी प्रकार प्रकाश पुञ्ज सूर्य के सामने घूमती पृथ्वी।

महान् ज्योतिर्विद आर्यभट्ट ने अपने आर्यभटीय ग्रन्थ में स्वयं ही अपने ग्रन्थ के लेखन के समय को स्पष्ट लिखा है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह ममजन्मनोऽतीताः।।

महायुग चतुर्युगी के तीन युगपाद क्रमशः सत्युग, त्रेता, द्वापर के बीतने के बाद अर्थात् कलि युगाब्द के आरम्भ से साठ वर्षों की षष्ठी = ६०×६०=३६०० वर्ष बीतने पर मेरे जन्म से तीन अधिक बीस अर्थात् तेइस वर्ष बीतने पर मैंने यह आर्यभटीय ग्रन्थ लिखा है। अभिप्राय यह है कि आर्यभट्ट का जन्म युगाब्द के ३६०० वर्ष बीतने पर हुआ और जब वे २३ वर्ष के हुए तब उन्होंने आर्यभटीय ग्रन्थ लिखा।

मीमांसा–आर्यभट्ट ने यहाँ शक संवत् या विक्रम संवत् का उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने स्पष्ट रूप से वैदिक गणना की सबसे छोटी इकाई युगाब्द को माना है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उनके समय में युगाब्द अधिक महत्त्वपूर्ण था, न कि शक संवत् या विक्रम संवत्। अन्यथा वे इनका उल्लेख करते। आर्यभट्ट के जन्म से अब तक व्यतीत समय =वर्तमान में गत युगाब्द ५११८–आर्यभट्ट का जन्म युगाब्द— ३६००=१५१८वर्ष। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आर्यभट्ट के जन्म से इस समय १५१९वाँ वर्ष चल रहा है। उस समय केवल युगाब्द का प्रचलन था, विक्रम संवत् शक, संवत् या ईसवीय, सन् इन सबका प्रचलन इनकी दिखायी जा रही घटनाओं के बहुत बाद में प्रारम्भ हुआ। ईसवीय सन् का पूर्ण प्रारम्भ तो ईस्वी की ही १७वीं सदी में ही पूर्ण रूप से शुरू हुआ।

लगध और आर्यभट्ट के समय में अन्तर = ३३८७-१५१८ =१८६९ वर्ष। इसलिए लगध के द्वारा आदि विषुव नाभि पर धनिष्ठा नक्षत्र के दृष्टिगत जो नक्षत्र मंडल के १२ विभाग किये गये थे। और उनके उत्तराधिकारियों द्वारा उन १२ विभागों में नक्षत्र आकृतियों के दृष्टिगत कल्पित जो राशि नामकरण किया गया था। अयन गति के कारण अब यह व्यवस्था यथा स्थान नहीं रह गयी थी और साथ ही, वेदों के अनुसार वर्ष आरम्भ विषुव दिवस से नहीं हो रहा था। इसलिए उस समय के विद्वानों ने इस व्यवस्था का पुनर्निर्धारण किया। किन्तु इस समय के विद्वानों को भी, वैदिक ऋषियों को पूर्णतया स्पष्ट अयन गति स्पष्ट नहीं हो पायी थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नवम अध्याय

वेद, वर्तमान गवेषणा और मध्यकाल के कुछ तथ्य

१-अयन गति

स्थिर नक्षत्रों के विषय में सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी, जिस नक्षत्र से गणना आरम्भ की गयी पुनः उसी नक्षत्र तक पहुँचने में जितना समय लगाती है, नक्षत्रों की दृष्टि से उसे एक **नाक्षत्र वर्ष** कहते हैं। आकाश में देखने पर इसे इस प्रकार से कहा जाता है कि, सूर्य जिस नक्षत्र पर गणना आरम्भ के समय होते हैं, वर्ष भर बाद गति करते हुए जब पुनः उसी नक्षत्र पर दिखाई दें तो, यह एक **नाक्षत्र सौर वर्ष** होता है, जिसका मान ३६५ दिन ६ घंटा १२ मिनट ३६ सेकेण्ड होता है। किन्तु वेदों में निर्धारित आर्तव वर्ष अथवा सावन वर्ष उत्तरी गोलार्ध में **वासंतिक विषुव सम्पात्** से आरम्भ करके, पुनः उसी वासन्तिक विषुंव सम्पात् तक आने में जो समय लगता है, उसे कहते हैं। इस वर्ष का मान ३६५ दिन ५ घंटा ४८ मिनट ४६ सेकेण्ड होता है। इस प्रकार जिस नक्षत्र के जिस बिन्दु पर वासंतिक विषुव संपात् अथवा शारदीय विषुव संपात् घटित होता है, पुनः वही वासंतिक विषुव सम्पात आने के २३ मिनट ५० सेकेण्ड बाद उस नक्षत्र के उसी विन्दु पर सूर्य दिखाई देते हैं। इस प्रकार से यह विषुव सम्पात् स्थिर नक्षत्रों के विषय में प्रतिवर्ष पूर्व से पश्चिम की ओर किञ्चित् विचलित होता रहता है, यह विचलन ही **अयनगति** है।

२-खगति

ग्रहों के दृष्टिकोण से ग्रही सूर्य को अचल कहा जाता है। क्योंकि सूर्य से निकले सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं, और सूर्य उनका केन्द्र है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूर्य में जो दैनिक गति और वार्षिक गति दिखाई देती है, वह पृथ्वी की ही विविध दैनिक एवं वार्षिक गति के कारण है। इस प्रकार सूर्य इन ग्रहों की दृष्टि से इनका केन्द्र होने के कारण अचल है। तथापि एक तीसरी गति सूर्य में है, जिसे **खगति** कहते हैं। मूलतः यह सूर्य अपने समग्र सौर मंडल अर्थात् ग्रहों के साथ बहुत बड़े वृत्ताकार पथ में पूर्व से पश्चिम को चल रहा है। सूर्य के अत्यन्त दूर होने के कारण यह गति लक्षित नहीं होती। किन्तु नक्षत्रों के इस सूर्य से भी अत्यन्त दूर होने के कारण यह गति थोड़े से विचलन के रूप में लक्षित होती है। सूर्य के सभी ग्रह सूर्य की पश्चिम से पूर्व दिशा में परिक्रमा करते हैं। इसलिए एक विषुव सम्पात् काल में दृश्यमान नक्षत्र बिन्दु से सूर्य की पश्चिम से पूर्व अर्थात् वामतः परिक्रमा करती हुई पृथ्वी पुनः जब तक उस नक्षत्र बिन्दु पर पहुँचती है, तब तक उसके थोड़ा पहले ही अपनी खगति के कारण सूर्य के पूर्व से पश्चिम होने से यह विषुव संपात् घटित हो जाता है। इस प्रकार यह सूर्य की खगति ही इस अयन गति का कारण है।

३-पृथ्वी की तीसरी गति

कुछ वर्तमान अन्तरिक्ष वैज्ञानिक सूर्य की इस खगति को न मानकर पृथ्वी की ही एक तीसरी गति भी मानते हैं। वे उसे इस अयन गति का कारण मानते हैं। उनके अनुसार अपने अक्ष पर २३ अंश २८ कला झुकी, हुई, अपनी धुरी पर घूमती हुई, सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी, एक तीसरे प्रकार की गति भी कर रही है। इस गति में पृथ्वी का सदैव अपने ऊर्ध्वाधर अक्ष पर २३ अंश २८ कला का झुकाव तो बना ही रहता है। परन्तु ऊपर स्थित पृथ्वी की अक्षकोटि का **सुमेरु** वृत्ताकार में धीरे-धीरे घूमता है। यद्यपि पृथ्वी के नीचे स्थित अक्ष का **कुमेरु** अक्ष के केन्द्र में ही नाचता है। जैसे घूमते हुए लट्टू का भ्रमरक अक्ष, भूमि पर स्थित भूमि के एक ही बिन्दु पर नाचता है। परन्तु ऊपर स्थित लट्टू का भाग, एक वृत्त में धीरे धीरे घूमता रहता है। तदनुसार भूमध्य सुमेरु लग्नरेखा, खगोल का जहाँ स्पर्श करती है। वह काल्पनिक बिन्दु ही धीरे-धीरे घूमता हुआ प्रतीत हो रहा है। इस काल्पनिक बिन्दु के समीपतम् जो नक्षत्र-तारा होता है, उसे ही **ध्रुव**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तारा कहते हैं। इस ध्रुव बिन्दु के परिक्रमण का काल २५८०० वर्ष होता है। इसी **ध्रुव बिन्दु** के परिभ्रमण के कारण **विषुव सम्पात** भी किञ्चित् विचलन के रूप में घूम रहा है। इस विषुव सम्पात् का नाड़ी वृत्त पर एक पूर्ण परिक्रमण २५८०० वर्ष में होता है। यह परिक्रमण काल सूर्य की खगति के कारण हो, या पृथ्वी की तृतीय गति के कारण हो, इसका एक पूर्ण परिक्रमण २५८०० वर्षों में ही होता है। यही अयन गति का मूल कारण है।

४-नाक्षत्र सौर संक्रान्ति मास व्यवस्था

मध्यकाल में किसी समय विषुव सम्पात्, आर्यभट्ट के समय से कुछ पहले अश्विनी नक्षत्र पर था। दक्षिणनाभि मकर राशि आरम्भ नक्षत्र पर थी। वर्तमान में इस दक्षिणनाभि का मकर से आरम्भ नक्षत्र से अन्तर लगभग २४ अंश है। इसलिए मकर आरम्भ पर दक्षिणनाभि होने का समय—

$$= \frac{२५८०० \times २४}{३६०} = १७२० \text{ वर्ष।}$$

अर्थात् लगभग १७२० वर्ष पूर्व अश्विनी नक्षत्र पर विषुव सम्पात् हो रहा था। इसलिए तत्कालीन ज्योतिषियों ने लगध के बाद उनके उत्तराधिकारियों द्वारा, मकरादि राशियों का पुनर्निर्धारण मेषादि राशियों के रूप में किया। और मेष का आदि अश्विनी नक्षत्र को मानते हुए, उसे ही विषुव सम्पात् मानकर, वर्षारम्भ मेष सम्पात् से आरम्भ किया। और मेषादि संक्रान्ति व्यवस्था चलायी जिसे राशि कहते हैं। इस प्रकार से नक्षत्र मंडल या भचक्र का राशि चक्र भी नाम हो गया। इस ३० अंश में दिखने वाले नक्षत्रों की कल्पित आकृति के आधार पर इनका राशि नामकरण किया गया। वह इस प्रकार है—**मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ,** और **मीन।** ये बारह राशियाँ हैं।

वेद में ये १२ राशि नाम नहीं हैं। यद्यपि वेद में पृथ्वी की परिक्रमण गति का अनुसरण करके बनने वाले काल चक्र के आदि विषुव सम्पात से ३०-३० अंशात्मक १२ विभाग वर्णित हैं। किन्तु वे आर्तव वर्ष के नियमानुसार पृथ्वी के वायुमंडल में सूर्य के प्रभाव के ज्ञापक एवं खगोल में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दृश्यमान सूर्य की स्थिति के ज्ञापक, मधुमास आदि १२ महीने हैं। इस प्रकार नक्षत्र मंडल भचक्र का राशि चक्र भी नामकरण हो गया।

५-वेदों में नक्षत्र मंडल का द्वादश मेषादि राशि चक्र में विभाजन न करने का कारण

नक्षत्र अत्यन्त दूर होने के कारण अचल के समान दिखाई पड़ते हैं, किन्तु मूलतः वे पूर्णतया अचल नहीं होते। अति दूर होने के कारण उनकी गति और स्थिति को हजारों वर्षों में लक्षित नहीं किया जा सकता। तो भी दीर्घ कालावधि में उनकी भी दिखाई पड़ने वाली स्थिति में परिवर्तन होगा। साथ ही अयन गति के कारण उनसे आर्तव वर्ष व्यवस्था सुनिश्चित नहीं हो सकती। इसलिए राशियों में स्थित नक्षत्रों की परिवर्तित स्थिति में विकृत कल्पना कृति, आर्तव संवत्सर व्यवस्था में भ्रान्ति उत्पन्न करने वाली होगी। इसी विषय को स्पष्ट करने के लिए वैदिक ऋषियों ने काल-चक्रात्मक क्रान्ति वृत्त के आदि विषुव अर्थात् उत्तरी गोलार्ध में वासंतिक विषुव सम्पात् से ३०-३० अंश के द्वादश विभाग किये और उनका मधुमास आदि द्वादश आर्तव नाम रखा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दशम अध्याय

वैदिक कालगणना की अन्य प्रणालियों के साथ तुलनात्मक समीक्षा और निष्कर्ष

१-मेघनाथ साहा भारतीय पञ्चांग निर्माण समिति

मेघनाथ साहा की अध्यक्षता वाली भारतीय पंचांग निर्माण समिति के अनुसार ईसा पूर्व चौथी सदी से बेबीलोन और यूनानियों के साथ भारत के सम्बन्ध बढ़ते गए। तब से लेकर लगभग ४०० ई. तक भारत में एक नये युग का आरंभ हुआ जिसे सिद्धांत युग कहा जाता है। इस युग का प्रथम ग्रंथ आर्यभटीय प्रथम-रचित आर्यभट्टीय है। वराहमिहिर ५०५ई. ने अपने ग्रंथ पंच सिद्धांतिका में अपने से पूर्व के पाँच सिद्धांत ग्रंथों का उल्लेख किया है। समिति की दृष्टि में बेबीलोन और यूनानियों के साथ भारत के सम्बंध बढ़ने का परिणाम यह हुआ कि भारतीय ज्योतिषियों ने वहाँ के ज्योतिषियों के अनुसार ही नक्षत्र मंडल के १२ राशि नामकरण अपने यहाँ भी स्वीकार किये। इस समिति के अनुसार नक्षत्र मंडल का राशि विभाग भारतीय ज्योतिषियों ने यूनानी एवं बेबीलोनीयन ज्योतिषियों से सीखा। किन्तु मेघनाथ साहा समिति ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्यों का ध्यान नहीं दिया।

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि, नक्षत्र मंडल का द्वादश विभाग मूलतः लगध का किया हुआ है, किन्तु उन्होंने इन द्वादश विभागों का राशि नामकरण नहीं किया। क्योंकि उनके ग्रन्थ वेदांग ज्योतिष में इन नामों का उल्लेख नहीं है। किन्तु उनके बाद एवं आर्यभट्ट प्रथम के पहले के दीर्घकाल में लगध के उत्तराधिकारी ज्योतिषियों द्वारा ही इनका १२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मकरादि राशि नामकरण किया गया। क्योंकि लगध ने उत्तरायण आरम्भ से नववर्ष का आरम्भ मानकर उत्तरायण को विशेष महिमा मंडित किया। जबकि वेदों में विषुव से वर्षा आरम्भ और वर्ष का मध्य स्पष्ट रूप से घोषित है। इस प्रकार लगध के उपरान्त अप्रसिद्ध, अज्ञात ज्योतिषियों द्वारा यह नक्षत्रमंडल का द्वादश राशि मंडल भी नामकरण किया गया। चूँकि लगध एवं उनके उत्तराधिकारियों को भी अयन गति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाया था इसलिए आर्यभट्ट से पूर्वकालीन ज्योतिषियों द्वारा इसका पुनर्निर्धारण अश्विनी आदि नक्षत्र से मेषादि राशि के रूप में किया गया। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि लगभग १७२० वर्ष पूर्व जब अश्विनी नक्षत्र के प्रारम्भ में विषुव सम्पात हो रहा था उसी समय वेदों के विषुव से वर्ष आरम्भ के दृष्टिगत यह पुनर्निर्धारण किया गया। यद्यपि इन लोगों को भी अयन गति स्पष्ट नहीं थी।

इसलिए मेघनाथ साहा जैसे अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों ने लगध के धनिष्ठा नक्षत्र से किये गये १२ विभागों पर बिना सूक्ष्मता से विमर्श किये यह कह दिया कि भारत में नक्षत्र मंडल का द्वादश राशि विभाजन बेबीलोनिया वालों से सीखा गया। जबकि लगध बेबीलोनिया वालों से बहुत पहले ही नक्षत्र मंडल का द्वादश विभाग किये थे। केवल उसका नामकरण उनके बाद के ज्योतिषियों ने उन्हीं को आधार बनाकर वैदिक ऋषियों के नक्षत्र नामकरण की दृष्टि से नाक्षत्रिक राशि नामकरण मकर आदि किया। इस समिति ने इस तथ्य पर भी ध्यान नहीं दिया कि जब वेदों में ही नक्षत्र-मंडल के २७ विभागों का नामकरण उनमें स्थित टिमटिमाते नक्षत्रों की आकृतियों के आधार पर किया गया जो भारतीय ज्योतिषियों के समक्ष विद्यमान था। इस नक्षत्र मंडल का लगध द्वारा किया गया १२ विभाग भी उनके समक्ष उपस्थित था। तब फिर इन स्पष्ट स्थितियों में भी भारतीय ज्योतिषियों को यूनानी बेबीलोनियन ज्योतिषियों से ऐसा विभाग सीखने की आवश्यकता क्यों होगी? इससे स्पष्ट है कि भारतीय ज्योतिषियों ने यह १२ विभाजन विदेशियों से नहीं सीखा अपितु विदेशियों ने ही भारतीय ज्योतिषियों से सीखा। इस प्रकार इस सम्बन्ध में मेघनाथ साहा समिति की बात मानी जाने योग्य नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि आर्यभट्ट और उनके समकालीन विद्वानों ने वेदों में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक अपने समय में विषुव दिवस पर हो रहे मेष संपात के दृष्टिगत इन १२ राशियों का मेष आदि १२ नामों का पुनर्निर्धारण किया था। उन्होंने समझा कि उन लोगों ने इन १२ राशियों के रूप में वैदिक आर्तव विषुव वर्ष को प्राप्त कर लिया है। इसलिए वैदिक मधुमास आदि की जगह साँक्रान्तिक राशि मास व्यवस्था प्रचलित कर दी। किन्तु वे वैदिक ऋषियों को स्पष्ट अयन गति के ज्ञान को नहीं प्राप्त कर सके थे। जिसके दृष्टिगत ही ऋषियों ने नक्षत्र मंडल का १२ राशि नामात्मक विभाग नहीं किया था। ऋषियों के इस तथ्य को न समझने के कारण, अयन गति के परिणामस्वरूप विषुव दिवस और मेष संक्रान्ति में अब तक २४° अंश अर्थात् लगभग २४ दिन का अंतर हो गया है।

२-लोकमान्य गंगाधर तिलक और मेघनाथ साहा भारतीय पंचांग निर्माण समिति

वेदों में विद्यमान इस अत्यंत वैज्ञानिक आर्तव मास वर्ष व्यवस्थित कालगणना, और साथ ही वेदों में ही विद्यमान नाक्षत्र चाँद्रमास वर्षव्यवस्था जिस मनीषी महापुरुष ने समझा, वे इस देश के महान स्वतंत्रता सेनानी व भारत माता के सपूत लोकमान्य गंगाधर तिलक थे। उन्होंने इसी तथ्य के आधार पर किसी समय आग्रहायण वर्ष का अग्र चाँद्रमास पर विषुव दिवस होने की तथ्यात्मक विवेचना कर आधुनिक चिन्तकों को चौंका दिया।

इससे यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि, उन्होंने यह भी अच्छी तरह समझ लिया था कि, वैदिक काल में आर्तव मधुमासादि विषुव वर्ष और नाक्षत्र पौर्णमासिक चाँद्रमास वर्ष व्यवस्थायें स्वतंत्र अलग-अलग साथ-साथ प्रयुक्त होती थीं। प्रकृति विरुद्ध दोनों को एक करने की मूर्खता वहाँ नहीं थी। वैदिक ऋषियों को **अयन गति** का सम्यक् ज्ञान था। किन्तु तिलक देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हुए देश के स्वतंत्र होने से पहले ही देश को समर्पित हो गये। और देश स्वतंत्र होने के बाद बनी मेघनाथ साहा की अध्यक्षता वाली भारतीय पंचांग निर्माण समिति में उनकी समकक्षता का कोई भी वैदिक विद्वान् नहीं था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अब हम मेघनाथ साहा की अध्यक्षता में बनी भारतीय पंचांग निर्माण समिति और उसके निर्णयों पर विचार करते हैं। इस समिति के अध्यक्ष मेघनाथ साहा स्वयं उच्च कोटि के अंतरिक्ष वैज्ञानिक थे। उन्हें आधुनिक यंत्रों से स्पष्ट किए आर्तव वर्ष का सम्यक् ज्ञान था। उन्हें अयन गति और नाक्षत्र सौर वर्ष स्पष्ट थे। अन्य कुछ सदस्य सिद्धांत ज्योतिष पंचांग निर्माण परम्परा के ज्ञाता थे। किन्तु कोई भी व्यक्ति वेदों का और वेदों में विद्यमान ज्योतिषीय मंत्रों का सम्यक् ज्ञाता नहीं था। जिसके कारण इस समिति ने कुछ अच्छे और कुछ पूरी तरह भ्रामक गलत निर्णय किए।

प्रकृति की निश्चित घटनाओं क्रमशः १. रात-दिन का चक्र, २. चंद्र की घटती-बढ़ती कलाओं के चक्र और ३. ऋतुओं का चक्र—इनके आधार पर साहा समिति ने कैलेण्डर निर्माण में चार आवश्यक बिन्दु निर्धारित किये जो निम्नलिखित है—

१. वर्ष और महीनों में दिनों की संख्या पूर्णांकों में होनी चाहिए।

२. वर्षारम्भ और मासारम्भ के दिन सुनिश्चित होने चाहिए।

३. एक सुनिर्धारित संवत् होना चाहिए।

४. चंद्रमासों को रखना हो तो सौर वर्ष के साथ उसका सम्बन्ध बैठाना चाहिए।

३-प्राकृतिक चन्द्रकलाओं के चान्द्रमासों के सम्बन्ध में मेघनाथ साहा समिति का अविचारित निर्णय

निश्चित रूप से इनमें से प्रथम तीन बातें सुविचारित व आवश्यक हैं, किंतु चौथी बात नितांत हास्यपद है। एक तरफ तो समिति ने माना कि चंद्रकलाएं प्रकृति की निश्चित घटना हैं, और दूसरी तरफ कहती है कि, चंद्र मासों को रखना हो तो सौर वर्ष के साथ उसका सम्बन्ध बैठाना चाहिए। अहो आश्चर्य! भाई चंद्रकलायें ही तो चंद्रमास हैं। उन्हें रखने या न रखने की असम्भव कल्पना कहाँ से कर ली? सौरवर्ष और ऋतुओं को उससे चलाना भी असंभव है। यह पागलपन कहाँ से लाए? वैदिक ऋषियों ने चंद्रमासों को नक्षत्र पूर्णिमा से जोड़कर उसे नाक्षत्र सौर वर्ष में परिणत होते रहने का जो प्राकृतिक सुव्यवस्थित रूप दिया। चंद्रमासों का उससे सुन्दर और कोई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूप हो ही नहीं सकता। चंद्रमासों की व्यवस्था रात्रि में चन्द्रमा की कलाओं को स्पष्ट करने के लिए की गयी है, न कि ऋतु बोध के लिए। ऋतुएँ तो अपनी धुरी पर २२° २८′ झुकी घूमती हुई, साथ ही सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी की द्विविध गति पर आधारित हैं, जिनके साथ अयन गति का भी स्पष्ट ज्ञान होना अति आवश्यक है। यह सभी ज्ञान वेद मंत्रों में स्पष्ट है। ऐसे मंत्रों के पारद्रष्टा ऋषि चंद्रमासों से ऋतु परक सौरमासों को कहने की मूर्खता भला कैसे कर सकते थे?

साहा समिति ने अपने उद्देश्य में जो यह चौथी अविचारित असंभव कल्पना कर ली, तो स्वाभाविक रूप से उतने अंश में अनुचित निर्णय भी करना ही था। समिति के निर्णय ये हैं—

१. वर्ष ३६५ दिन ५ घंटे ४८ मिनट ४६ सेकंड अर्थात् ३६५.२४२२ दिनों का होगा। इसलिए महीने ऋतुओं के अनुसार स्थिर रहेंगे।

२. भारतीय वर्ष का आरंभ वसंत विषुव से यानी २२ मार्च लीव यानी लौंद वर्ष में २१ मार्च से होगा।

३. वर्ष के दूसरे से लेकर छठे सौर महीनों में ३१ दिन रहेंगे। शेष में ३० दिन लीव वर्षों में प्रथम माह में ३१ दिन रहेंगे। भारतीय प्रथा में लीव वर्ष उसी वर्ष होगा जब ग्रेगोरी कैलेंडर में लीव वर्ष होगा।

४. दिन का आरंभ अर्धरात्रि से माना जायेगा।

५. राष्ट्रीय पंचांग उज्जैन के अक्षांश २३° अंश ११′ कला और ग्रीनिच के १ घंटा ३० मिनट पूर्वी देशांतर ८२° ३०′ के लिए बना करेगा।

६. चैत्र, वैशाख आदि महीनों का और शक संवत् का प्रयोग होगा।

४-साहा समिति के निर्णय के गुण-दोष पर तथ्यात्मक विमर्श

महान मनीषी लोकमान्य गंगाधर तिलक द्वारा उद्घाटित कालगणना विषयक वेद के रहस्यों से प्रभावित होकर ही, अंतरिक्ष वैज्ञानिक मेघनाथ साहा की अध्यक्षता वाली इस भारतीय पंचांग निर्माण समिति का गठन किया गया था। आधुनिक विज्ञान के आलोक में वैदिक तथ्यों की पृष्ठभूमि पर एक उत्कृष्ट भारतीय पंचांग का निर्माण करना ही इसका उद्देश्य था। इसलिए समिति ने तिलक द्वारा उद्घाटित तथ्य वसंत विषुव से वर्ष का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आरंभ और ऋतुओं के अनुसार महीनों की स्थिरता को यथावत् ग्रहण किया। किन्तु ऐसा लगता है कि, संभवतः समिति के ज्योतिषियों में आपसी वैमत्य के कारण, अथवा समिति में तिलक जैसे उत्कृष्ट विद्वान् के अभाव के कारण, यह समिति ग्रेगोरियन अंग्रेजी कैलेंडर और उसकी तारीखों के पीछे-पीछे चलने को मजबूर हो गई है। विश्व स्तर का उत्कृष्ट **''वैदिक वैज्ञानिक कैलेंडर''** प्रस्तुत करने का साहस इसमें नहीं था।

समिति का छठा निर्णय तो अत्यन्त अविचारपूर्ण एवं हास्यास्पद है जिसमें वह ऋतुओं के स्थिर महीनों का नाम **चंद्रमासों** का ही रख देती है। जैसा कि उसने अपने उद्देश्य में कहा ही था कि, "अगर चंद्रमासों को रखना है तो सौर वर्ष के साथ उसका सम्बन्ध बैठाना चाहिए।'' जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि चंद्रमास तो चंद्रमा की कला हैं, वे उससे अलग हो ही नहीं सकते। इसलिए चंद्रमासों को न रखने की बात हास्यास्पद है। वह तो प्रकृति में घट रही घटना चंद्रमा की कलाओं का परिगणन हैं। वह तो स्वाभाविक रूप से प्रकृति में रहेंगे ही। उन्हें कोई भी मनुष्य ना तो परिवर्तित कर सकता है और न हि घटा-बढ़ा सकता है। केवल उनका प्रकृति की घटनाओं के क्रम से परिगणन किया जा सकता है। इनका सम्बन्ध ऋतुओं से नहीं है, और न ही कोई इनका सम्बंध ऋतुओं से जोड़ सकता है, यह तो मात्र रात्रि में दिखने वाली चंद्रमा की कलाओं को बताते हैं।

अब रही आर्तव सौर मासों की बात तो, वे इन चांद्र कलाओं से पूरी तरह अलग हैं, जिनका आरंभ विषुव से होता है, और जो सभी वेदों में लिखे हैं, वे इस प्रकार हैं—

मधु-माधव– वसंत ऋतु। शुक्र-शुचि– ग्रीष्म ऋतु। नभ-नभस्य– वर्षा ऋतु। इष-उर्ज– शरद ऋतु। सह-सहस्य– हेमंत ऋतु। तप-तपस्य– शिशिर ऋतु।

ध्यान रहे ये महीने चैत्र, वैशाख आदि नाक्षत्र चाँद्र महीने नहीं हैं। वैदिक कालचक्र से अनभिज्ञ लोग इन्हें चाँद्र महीनों का पर्यायवाची समझते हैं, जो पूरी तरह से गलत है।

तथ्य यह है कि, सृष्टि के आदि काल से सूर्योदय से दिन का आरंभ और रात्रि की समाप्ति इसी प्रकार सूर्यास्त से दिन की समाप्ति और रात्रि का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आरंभ, क्रमिक दिन और रात का बढ़ना और घटना तदनुसार ऋतु परिवर्तन। रात्रि में चंद्रोदय व चंद्रास्त। चंद्रमा की कलाओं में प्रत्येक रात क्रमशः परिवर्तन। इन प्राकृतिक सत्यों के वैदिक ऋषि पूर्ण वैज्ञानिक द्रष्टा थे।

वेद मंत्रों में सूर्य से ऋतुओं का ज्ञान होना स्पष्ट है।

पूर्वामनुप्रदिशं पार्थिवानां, ऋतून् प्रशासद्विदधावनुष्ठु।।[1]

अर्थ– यह सूर्य पूर्व दिशा से प्रवेश करता हुआ ऋतुओं के प्रशासन से पृथ्वी के सभी प्राणियों को व्यवस्थित धारण करता है।

इसके अतिरिक्त अनेक मंत्रों से ऋतुओं और सौर मासों का विषुव से विभाजन स्पष्ट किया जा चुका है।

इसी प्रकार रात्रि की गणना चंद्र कलाओं से, उसके द्विविध पक्षों से, और नाक्षत्र पूर्णमासों से की गयी है। देखें ये श्रुतियाँ—

रात्रिर्वै चन्द्रमाः।[2]

निश्चय ही रात्रि का ज्ञान चंद्रमा से होता है।

चन्द्रमा वै पञ्चदशः। एष हि पञ्चदश्यामपक्षीयते पञ्चदश्यामापूर्यते।[3]

निश्चय ही चन्द्रमा के १५-१५ रात्रियों के पक्ष है। पूर्णिमा से यह १५ कलाओं में क्षीण होता है, और पुनः १५ कलाओं में पूर्ण होता है।

'षोडशकलो वै चन्द्रमाः।'[4]

निश्चित ही चन्द्रमा की १६ कलायें हैं।

मीमांसा- चंद्रमा की १६ कलायें इस प्रकार हैं दोनों ही पक्षों में प्रतिप्रदा से चतुर्दशी तक १४, १५वीं कला पूर्णिमा और १६वीं कला अमावस्या। इस प्रकार कुल १६ हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि, वैदिक काल में ऋतुओं के लिए सौरमास वर्ष व्यवस्था। और रात्रि ज्ञान के लिए चन्द्र कलाश्रित पक्ष और नक्षत्र पूर्णमासी व्यवस्था अलग-अलग थी। इसमें कोई भ्रान्ति नहीं थी।

साथ ही उक्त ब्राह्मण श्रुतियों से यह भी स्पष्ट है कि, इनके लिखे जाने के समय चंद्र कलाओं को प्रथमकला से आरंभ कर एक पक्ष अमाकला अर्थात् अमावस्या कला पर पूर्ण होता था। तो दूसरा पक्ष पूर्णिमाकला पर पूर्ण होता था।

---

१. ऋग्वेद१/९५/३। २. शतपथ १२/४/४/७
३. तैत्तिरीय १/५/१०/५। ४. षड्विंश ब्राह्मण ४/६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५-सुनिर्धारित सम्वत् युगाब्द

मेघनाथ साहा समिति ने अपने उद्देश्यों में तीसरा उद्देश्य लिखा है कि, एक सुनिर्धारित संवत् होना चाहिए। यह बात तो बहुत अच्छी है। अब सुनिर्धारित कौन-सा संवत है, यही देखना है।

ईसवी सन् ईसामसीह के जन्म काल से माना जाता है। उसमें उनका जन्मकाल अभी तक निर्धारित नहीं हो सका है। कुछ इतिहासकार ईसा का जन्म-काल इस सन् के आरंभ काल के ४ वर्ष पूर्व मानते हैं, तो कुछ ४ वर्ष बाद, कुछ दिसम्बर में, तो कुछ अप्रैल में, इस प्रकार यह सुनिर्धारित नहीं है।

काल गणना के सम्बन्ध में अत्यंत महत्व नियमित की जाने वाली गणना का होता है। इस भारत देश में सभी धार्मिक कार्यों में और प्रतिदिन प्रात:-सायं की जाने वाली संध्या में किये जाने वाले संकल्प में, अतीव प्राचीन काल से चली आ रही काल गणना का स्वरूप निम्नलिखित है।

ॐ तत्सदद्य श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैक-देशान्तर्गते पुण्यक्षेत्रे अमुकसंवत्सरे अमुकर्तौ अमुकमासे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकनामाहं श्रीमत्परमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातः सायं वा सन्ध्योपासनं करिश्ये।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में ब्रह्मा के एक दिवस को एक कल्प और उसे ही सृष्टि का समय बताया गया है। एक कल्प में १४ मन्वन्तर और सहस्र चतुर्युग बताये गये हैं। वहीं एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युग बताते हुए मन्वन्तर और युग परिवर्तन में सन्ध्यांश काल के योग से सामञ्जस्य दिखाया गया है। इस संवत्सर में वर्तमान कल्प आरम्भ से संधियों के सहित छः मनु व्यतीत हो गये हैं। और वर्तमान में सातवाँ वैवस्वत मनु चल रहा है। इस मनु के प्रारम्भ से अब तक २७ महायुग अर्थात् चतुर्युगों का समय बीत चुका है। २८वें चतुर्युग में सतयुग, त्रेता और द्वापर यह तीन युग बीत चुके हैं। कलियुग का प्रथम चरण चल रहा है। कलियुग के आरम्भ से अबतक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५११८ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। ११९वें वर्ष का मधुमास चल रहा है। इस प्रकार इस संकल्प में बोली जा रही गणना से कल्प के आदि से अबतक १९७२९४९११८ वर्ष बीत गये हैं। वहीं इस धरती पर सृष्टि के आरम्भ से अब तक १९५५८८५११८ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। अथर्ववेद में सृष्टि की आयु का यह मंत्र है—

"शतं ते अयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।[१]"

अंकानां वामतो गतिः— अंकों को बायें से लिखने के इस नियम से, इस मंत्र के मंत्रार्थ से जो संख्या आती है। वह इस प्रकार है—

४३२०००००० वर्ष।

स्मृतियों में भी कल्प की यही आयु दी गई है।

यजुर्वेद में चारों युगों के नाम इस प्रकार दिये हुए हैं।

कृताय आदिनववर्षम्, त्रेतायै कल्पिनम्, द्वापराय अधिकल्पिनम्, आस्कन्दाय सभास्थाणुम्।।[२]

इस प्रकार स्पष्ट है कि चारों युगों की और उनकी दीर्घ कालावधियों की कल्पना वैदिक कालीन ही है, बाद की नहीं। उनके प्रति धारणा की अभिव्यक्ति ऐतरेय श्रुति में युगों के विषय में दिये इस रूपक से होती है।

कलिःशयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः,
उत्तिष्ठन्स्त्रेता भवति, कृतं संपद्यते चरन्श्चरैवेति।। चरैवेति।।[३]

सोता हुआ **कलि** होता है, जगता हुआ **द्वापर** होता है, उठता हुआ **त्रेता** होता है, चलते हुए **कृतयुग** (सतयुग) संपादित हो जाता है। इसलिए चलते ही रहो, गतिशील ही रहो। अर्थात् गतिशील कलियुग द्वापर त्रेता कृतयुग के समान उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता रहता है।

इस प्रकार से चारों युगों का और उनके दीर्घ कालों का वर्णन वेदादि प्राचीन ग्रन्थों में हुआ है। आर्यों की यह गणना हिन्दुओं, पार्सियों, स्कन्दनेवियनों एवं बेबीलोनिया वालों में सामान्य रूप से प्रचलित है। अब इस युग संवत्सर या युगाब्द के विषय में यह विचार करना है कि, यह सृष्टि गणना वैज्ञानिक ज्योतिष पर आधारित है या काल्पनिक।

---

१. अथर्ववेद ८/२/२१। २. यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता ३०/१८।
३. ऐतरेय ब्राह्मण ३३/३/४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६-युग का आरम्भ ग्रहों के तारतम्य से होता है

युग का आरम्भ किसी व्यक्ति के जन्मदिन से नहीं होता। वह तो नक्षत्रों और ग्रहों की विशेष स्थिति में ही होता है। जैसा कि महाभारत के निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है—

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यः बृहस्पतिः ।
एकराशौ समेष्यन्ति प्रवर्त्यस्यति तदाकृतम् ।।[१]

जब चन्द्रमा, सूर्य, पुष्य और बृहस्पति विषुव दिवस पर एक साथ होंगे, तब कृतयुग का आरम्भ होगा।

अस्मिन् कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहा।
विना तु पादमन्दोचान्मध्वादौ तुल्यता मिताः।।[२]

इस कृतयुग के अन्त में सभी ग्रह मध्यगत हुए। उनमें किसी भी प्रकार का तनिक भी मन्द या उच्च स्थिति नहीं रही। मधुमास के आदि विषुव पर, जब ये सभी ग्रह एक साथ हुए तब कृतयुग का आरम्भ हुआ।

७-विविध संवत्सर आरम्भ विषयक मीमांसा

वैदिक काल में मेषादि राशियों का प्रचलन नहीं था। मधुमास आदि १२ महीनों का ही प्रयोग होता था। मधुमास का प्रारम्भ विषुव दिवस से होता था। किसी काल में वैदिक ऋषियों को ज्ञात अयन गति का ज्ञान जब नष्ट हो गया। तब पुनः आर्तव वैदिक विषुव काल गणना की प्राप्ति हेतु भारतीय ज्योतिषियों का प्रयास जारी रहा। जिसमें सर्वप्रथम वेदांग ज्योतिष के प्रणेता लगध रहे। उन्होंने ही नक्षत्र मंडल के १२ विभाग कर उन्हें सौर आर्तवमास माना। यद्यपि उन्होंने इन सौर मासों का नाक्षत्र नामकरण नहीं किया। किन्तु उनके बाद उनकी शिष्य परम्परा के लोगों ने ही इन १२ सौर मासों का मकरादि १२ राशियों का नामकरण कर दिया।

लगध द्वारा चलायी गयी इस सौरमास वर्ष व्यवस्था में वेदों से एक स्पष्ट विसंगति थी। वेद उत्तरी गोलार्ध के वासंतिक विषुव से वर्षारम्भ करते थे, जबकि लगध की परम्परा ने उत्तरायण के आरम्भ के साथ नववर्ष का

१. महाभारत बन पर्व। २. सूर्य सिद्धान्त १/५७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आरम्भ माना गया। बाद में जिसे उनके शिष्यों ने मकरादि संक्रान्ति मास वर्ष-व्यवस्था में बदल दिया।

इस उत्तरायण से नव वर्ष आरम्भ की व्यवस्था, जो वेदानुकूल नहीं थी। वेद में अत्यन्त श्रद्धा रखने वाले मनीषियों को खटक रही थी। वर्तमान से लगभग १७२० वर्ष पूर्व तत्कालीन मनीषियों ने इसका पुनः संसोधन किया। उनके द्वारा संशोधित नक्षत्र मंडल का द्वादश विभाग उस समय आदिविषुव से प्रारम्भ कर ३०-३० अंश की दूरी के मेषादि १२ विभाग नक्षत्र राशि आकृतियों के नाम से किये गये। उन्हें लगा कि विषुव दिवस से इस संक्रान्ति मास व्यवस्था को लागू कर देने से हमने आर्तव वैदिक काल गणना के शुद्ध रूप को प्राप्त कर लिया है। किन्तु अयन गति का सम्यक् ज्ञान न होने के कारण यह व्यवस्था त्रुटिपूर्ण रही। इसी कारण से वेदों में राशि नामकरण नहीं है। उनको जो वैदिक तथ्य मालूम थे। उन्होंने उनमें जहाँ मध्वादि का प्रयोग था वहाँ मेषादि लिख दिया। मेरी दृष्टि में **''मेषादौ तुल्यता मिताः''** के स्थान पर **''मध्वादौ तुल्यता मिताः''** लिखा जाना चाहिए। यही मानकर मेरे द्वारा अर्थ किया गया है। क्योंकि मूलतः वैदिक ऋषियों के द्वारा प्राप्त सत्य ही महत्वपूर्ण व वैज्ञानिक हैं। वेदों में सब जगह विषुव से ही वर्षारम्भ को माना गया है। इसलिए सभी ग्रहों के विषुव दिवस पर एक साथ होने से सृष्टि का भी आरम्भ हुआ, यही उचित है।

जो सन् या सम्वत् व्यक्तियों के जन्मदिन या राज्यारोहण से प्रारम्भ किये गये हैं, वे सभी उन-उन व्यक्तियों की मृत्यु के बाद काफी समय के अन्तराल पर उनके अनुयायियों द्वारा आरम्भ किये गये हैं। जिनमें कुछ बहुत ही प्रचलित हैं, उनमें भी भारत में तीन सम्वत् या सन् का प्रयोग हो रहा है। क्रमशः विक्रम सम्वत्, ईसवीय सन्, और शक् सम्वत्। यह एक दूसरे से बाद में प्रारम्भ हुए माने जाते हैं।

आधुनिक इतिहासकारों की दृष्टि में विक्रमादित्य ने, या उनके अनुयायियों ने अपने से बहुत पहले से विक्रम सम्वत् का आरम्भ कराया। क्योंकि उसका उल्लेख उस समय के ग्रन्थों में नहीं मिलता।

इसी प्रकार क्राइस्ट के जन्म के ५००वर्ष बाद छठी शताब्दी में डायोनीसियस एक्सिग्यूअस नामक पादरी तत्कालीन ग्रन्थों के द्वारा क्राइस्ट

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के जन्म वर्ष की गणना करके बीते हुए समय को जोड़कर २५ दिसम्बर को क्राइस्ट का जन्मदिन मानकर इसवीय सन् का जन्मदाता बना। बाद में दूसरे पादरियों ने इस गणना को गलत पाया और ४ अप्रैल को क्राइस्ट का जन्म माना। दूसरे कुछ पादरी क्राइस्ट का जन्म २५ दिसम्बर ही मानते रहे, और आज तक क्राइस्ट का जन्मदिन निर्धारित नहीं हो सका। इसलिए यह गणना तथ्यात्मक नहीं है।

पुनः कुछ लोगों ने शकों पर विक्रमादित्य की विजय का काल निर्धारित कर शक् सम्वत् का आरम्भ किया। जिसे आधुनिक इतिहासकार सही नहीं मानते।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इनमें से किसी भी महापुरुष का जन्मदिन, राज्यारोहण काल या विजय काल स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किया जा सका है। इसलिए इन सभी व्यक्तियों पर आधारित काल गणनायें अवैज्ञानिक और कल्पना प्रसूत हैं। अतः इन्हें माना जाना कथमपि उचित नहीं हैं। यहाँ यह भी तथ्य गम्भीरतापूर्वक विचारणीय है कि, युगों का परिवर्तन नक्षत्रों, ग्रहों की विशेष युति पर होता है। उस युति में वेदों के अनुसार विषुव दिवस का होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। युगव्यवस्था उसी से चलती है। वर्तमान युग का ५११९वाँ वर्ष चल रहा है। इसलिए युग गणना को जो वैदिक काल गणना की सबसे छोटी इकाई है, इस सबसे छोटी इकाई को ही आधार मानना उपयुक्त है।

यहाँ यह तथ्य भी विचारणीय है कि विक्रम, शक और ईस्वी में से किसी भी संवत् का उल्लेख १५०० सौ वर्ष पूर्व के किसी ऐतिहासिक शिलालेख या ग्रन्थ में नहीं मिलता। जबकि युगाब्द का स्पष्ट उल्लेख आर्यभट्ट ने अपने ग्रन्थ आर्यभटीय में १४९५ वर्ष पहले किया है। अतः युगाब्द ही सर्वाधिक प्रामाणिक इकाई है।

८-आर्तव वैदिक वर्ष और नाक्षत्र वर्ष में भेद

प्राकृतिक वैदिक आर्तव सौर वर्ष– प्राकृतिक आर्तव वैदिक वर्ष का आरम्भ उत्तरी गोलार्ध के वासंतिक विषुव से होता है। यही विषुव दक्षिणी गोलार्ध का शारदीय विषुव है। वर्ष का आरम्भक होने के कारण इस विषुव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को **आदि विषुव** कहते हैं। इस प्राकृतिक आर्तव वर्ष की गणना इस आदिविषुव से आरम्भ कर पुनः इसी विषुव के प्राप्त होने पर पूर्ण होती है। इसका मान दिनादि ३६५ दिन ५ घण्टे ४८ मिनट ४६ सेकेण्ड अर्थात् ३६५.२४२१९६ दिन होता है।

नाक्षत्र सौर वर्ष– नाक्षत्र सौर वर्ष की गणना का आरम्भ किसी समय मध्यकालीन ज्योतिषियों द्वारा उत्तरी गोलार्ध में वासंतिक विषुव पर अश्विनी नक्षत्र के प्रारम्भ होने के साथ की गयी। उन ज्योतिषियों ने अश्विनी नक्षत्र के आरम्भ पर सूर्य के दिखने से लेकर पुनः उसी अश्विनी नक्षत्र के आरम्भ पर सूर्य के दिखने तक को एक वर्ष मानकर किया। इस प्रकार उन ज्योतिषियों ने अश्विनी नक्षत्र पर सूर्य के दिखने से आरम्भ कर ३०-३० अंश की दूरी से सम्पूर्ण नक्षत्र मंडल को १२ विभागों में विभक्त किया और इस दूरी को सौर **संक्रान्ति मास** के नाम से प्रचलित किया। इन १२ विभागों के नाम उन-उन विभागों में दिख रही नक्षत्र राशि की काल्पनिक आकृतियों के आधार पर किया। वही यह मेषादि १२ राशियाँ हैं। इस प्रकार नक्षत्र मंडल के अश्विनी नक्षत्र के आरम्भ से पुनः उसी अश्विनी नक्षत्र के दिखने तक के काल को एक नाक्षत्र सौर वर्ष कहते हैं।

अयन-गति के कारण सूर्य के जिस विषुव बिन्दु पर पहुँचने पर वर्षारम्भ होता है, उस समय उस विषुव बिन्दु पर जो नक्षत्र होता है, सम्पूर्ण भ चक्र के भ्रमणोपरान्त वर्ष भर बाद पुनः उसी नक्षत्र पर सूर्य के दिखने से थोड़ा पहले ही विषुव बिन्दु आ जाता है। जब कि नक्षत्र उसके थोड़े से अन्तराल पर आता है। इस प्रकार अयन गति के कारण उस नक्षत्र बिन्दु से विषुव के विचलन का अन्तराल प्रतिवर्ष ५०.२३२५५८१ विकला होता है। जो २५८०० वर्षों में पूरे ३६० अंश पूरा हो जाता है। वर्तमान में यह सांक्रान्तिक नाक्षत्र वर्ष व्यवस्था विषुव से विचलित होते हुए, विषुव से लगभग २४ अंश अंतराल के बाद आती है। इस प्रकार आर्तव वैदिक विषुव वर्ष व्यवस्था से नाक्षत्र सौर वर्ष २४ अंश विचलित हो चुका है। इस गणना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि $\frac{२५८००\times२४}{३६०}$ =१७२० वर्ष पहले मेषादि सांक्रान्तिक नक्षत्र वर्ष व्यवस्था का आरम्भ किया गया। जो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्तमान में २४ दिन आर्तव व्यवस्था से हट चुकी है। इस प्रकार नाक्षत्र सौर वर्ष व्यवस्था आर्तव सौर वर्ष व्यवस्था से भिन्न है।

९-वैदिक आर्तव वर्ष और चान्द्र वर्ष में भेद

नाक्षत्र चाँन्द्र वर्ष– मूलत: मध्यकालीन ज्योतिषियों से बहुत पहले ही वैदिक ऋषियों ने नक्षत्र मंडल के २७ विभाग कर और नाक्षत्र मासों को निश्चित नक्षत्र चन्द्रपूर्णिमाओं से जोड़कर, और साथ ही चान्द्र अधिक मास और क्षय मास की व्यवस्था के द्वारा इन सुव्यवस्थित नाक्षत्र चान्द्र मासों से बनने वाले नाक्षत्र चान्द्र वर्ष को नाक्षत्र सौरवर्ष व्यवस्था में परिणत होते रहने की सुव्यवस्था कर दी थी। वह १२ नाक्षत्र चान्द्रमासों और उसी व्यवस्था से आने वाले अधिक मास और क्षय मास के द्वारा नाक्षत्र सौर वर्ष में परिणत होता रहता है। इन ऋषियों ने सांक्रान्तिक राशि-विभाजन अयन-गति का सम्यक् ज्ञान होने के कारण नहीं किया था। इस अयन-गति का सम्यक् ज्ञान न होने से आर्तव विषुव वर्षों को शुद्ध रूप से प्राप्त करने की आकांक्षा में मध्यकालीन ज्योतिषियों ने यह सांक्रान्तिक १२ मेषादि राशि विभाग किया, जिसका आरम्भ मूल रूप से वैदिक आर्तव वर्ष को प्राप्त करने के प्रयास में सर्वप्रथम वेदांग ज्योतिष के प्रणेता लगध द्वारा ही किया गया था। किन्तु अयन गति का सम्यक् ज्ञान न होने से वे सफल नहीं हो सके थे। इसकी पूर्ण विवेचना यथा स्थान की जा चुकी है।

आधुनिक लोगों द्वारा चाँन्द्रमासों के पर्यायवाची के रूप में आर्तव मासों को समझना या लिखना पूर्णतया गलत है। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि, वैदिक आर्तव मासों का नामकरण ऋतु-परक है और वे आदिविषुव से प्रारम्भ होकर ३०-३० अंश की दूरी पर मधुमास आदि ऋतु अनुकूल रखे गये हैं। जबकि चाँन्द्रमासों का नामकरण नक्षत्रों पर होने वाली पूर्णिमा के आधार पर चैत्र आदि किया गया है। जिस प्रकार से चाँन्द्रमासों के स्थान पर वैदिक आर्तवमासों का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार आर्तव वैदिक मासों के स्थान पर नाक्षत्र चाँन्द्रमासों का भी प्रयोग नहीं किया जा सकता है। जैसी गलती मेघनाथ साहा समिति ने की, इसका स्पष्टीकरण भी किया जा चुका है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वेदों में और ब्राह्मणों में भी सर्वत्र विषुव से ही नव वर्ष के आरम्भ की बात कही गयी है। उसी क्रम में विषुव के बाद पड़ने वाली पूर्णिमा को रात्रि की दृष्टि से वर्ष की प्रथम पूर्णिमा मानते हुए दीक्षा के लिए उत्कृष्ट माना गया है। जैसा कि यह श्रुति स्पष्ट करती है—

"फल्गुनीपूर्णमासे दीक्षेरन्। मुखं वा एतत्संवरस्य यत् फल्गुनी पूर्णमासः। मुखत एव संवत्सरमारभ्य दीक्षन्ते। तस्यैकैव निर्या यत्साम्मेध्ये विषुवान्त्संद्यते। चित्रापूर्णमासे दीक्षेरन्, मुखं वा एतत्संवरस्य यच्चित्रापूर्णमासो मुखत एव संवत्सरमारभ्य दीक्षन्ते तस्य न काचन निर्या भवति।[१]"

अर्थ- फल्गुनी पूर्णमास में दीक्षा लेते है। यह जो फल्गुनी पूर्णमास है, संवत्सर का मुख है। मुख से ही संवत्सर का आरम्भ कर दीक्षित होते हैं। उसमें एक ही निन्दा की बात है, यदि उस फल्गुनी पूर्णमास के बाद **विषुवदिवस** आता है तो ऐसी परिस्थिति में चित्रा पूर्णमास में दीक्षा लेते हैं। क्योंकि तब चित्रा पूर्णमास ही संवत्सर का मुख है। विषुव के बाद चित्रा पूर्णमास होने के कारण उसमें कोई निन्दा नहीं है।

मीमांसा- यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि विषुव के बाद पड़ने वाली पूर्णिमा की रात्रि को ही वर्ष की प्रथम पूर्णिमा की रात्रि के रूप में स्वीकार किया गया है। चाहे वह फल्गुनी पूर्णिमा हो अथवा चित्रा पूर्णिमा। जो भी विषुव दिवस के बाद प्रथम पड़ती है, वही रात्रि दीक्षा के लिए उपयुक्त मानी गयी है। इससे यह भी स्पष्ट है कि विषुव के बाद पड़ने वाली पूर्णिमा निश्चित नहीं है, और वह कालान्तर में परिवर्तित होती रहती है।

यहाँ यह भी स्पष्ट है कि, फल्गुनी पूर्णिमा से युक्त अथवा चित्रा पूर्णिमा से युक्त चाँन्द्रमास को मधुमास नहीं कहा गया है। अपितु उसे फल्गुनी पूर्णमास या चित्रा पूर्णमास कहा गया है। इसका कारण यह है कि मधुमास का आरम्भ विषुव दिवस से ही होता है। जब कि चाँन्द्रमास का नाम चाँन्द्र पूर्णिमा से युक्त नक्षत्र के नाम पर किया गया है- फाल्गुन, चैत्र आदि।

रात्रि में चाँन्द्रमासों का और पूर्णिमा कला का ब्राह्मण ग्रन्थों में महत्व बहुलता से प्राप्त होता है। जब कि वैदिक मंत्रों के विमर्श से यह स्पष्ट हो

१. तैत्तिरीय सं. ७/४/८।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चुका है कि, मधुमास आदि आर्तव मास व्यवस्था, प्रकृति के आर्तव संवत्सर स्वरूप की ज्ञापिका, दिवस प्रधान वैदिक कालचक्र विज्ञान की प्रथम और मुख्य व्यवस्था है।

१०-ईसवीय सन् – संवत् का इतिहास

रोमवासियों के प्राग्-ऐतिहासिक काल में एक जंत्री प्रचलित थी। उस समय उसका नाम अलबन जंत्री था। यह अलबन जंत्री ही ईसवीय - ख्रिस्तीय काल-गणना का मूल स्रोत है। प्रारम्भ में अलबन जंत्री में १० मास का ही वर्ष होता था, और वह ३०४ दिन का ही था। वर्षारम्भ मार्च महीने से और वर्ष की समाप्ति दिसम्बर महीने की समाप्ति से होती थी। सितम्बर सातवाँ, अक्टूबर आठवाँ, नवम्बर नौवाँ और दिसम्बर १०वाँ महीना था। जैसा कि इनके नाम से ही स्पष्ट है। इसी प्रकार से वर्ष का पाँचवाँ महीना **''क्विंटिलियस''** जिसका अर्थ रोम में पाँचवाँ और छठा महीना **''सिक्सटिलिस''** अर्थात् रोमी भाषा में छठा, यही नाम था। ई०पू० ७५३वें वर्ष अर्थात् कलियुगाब्द २३४९वें वर्ष में **रोम नगर का निर्माता प्रथम शासक राजा रोम्यूलस** अलबन जंत्री के कतिपय मासों की दिन संख्या में कुछ जोड़-घटाव के द्वारा जंत्री के आधार पर नगर की स्थापना के संदर्भ में २१ अप्रैल को **अलबन जंत्री से रोमीय जंत्री** का प्रवर्तन किया। इस प्रकार उसके समय इस रोमीय जंत्री के नाम निम्नलिखित थे—

१. **मार्च-** रोमवासियों के मुख्य देवता **''मार्च''** के नाम से
२. **एप्रैल-** लैटिन भाषा के **''एपरिर''** से
३. **मई-** रोम की देवी **''माईमा''** के नाम पर से
४. **जून-** स्वर्ग की रानी **''जूनो''** के नाम पर
५. **क्विंटिलियस-** रोमन भाषा में **''क्विंटिलियस''** का अर्थ पाँचवाँ होता है।
६. **सिक्सटिलिस-** रोमन भाषा में **''सिक्सटिलिस''** का अर्थ छठाँ होता है।
७. **सिप्टम्बर-** रोमन भाषा में **''सिप्टम्बर''** का अर्थ सातवाँ होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

८. **अक्टूबर-** रोमीय भाषा में "**अक्टूबर**" का अर्थ आठवाँ होता है।
९. **नवम्बर-** रोमन भाषा में **नवम्बर** का अर्थ नववाँ होता है।
१०. **दिसम्बर-** रोमन भाषा में **दिसम्बर** का अर्थ दसवाँ होता है।

इस प्रकार इस जंत्री में भी वर्ष के महीनों की संख्या १० और दिनों की संख्या ३०४ ही थी। उसके बाद रोम के द्वितीय राजा **न्यूमा पाम्विलियास** ने कलि युगाब्द २३८९वर्ष में **यूनानी जंत्री** जो भारतीय चाँन्द्रमासों के आधार पर यूनान में प्रचलित थी, उसी के समान ३५४ दिन का चान्द्रवर्ष और १२ महीनों वाला चान्द्र मास बनाया। किन्तु उसने नाम अपने पुराने दस वही रखे और केवल दो महीने, जनवरी और फरवरी ११वें और १२वें महीने के रूप में उसमें जोड़ दिये। उसके बाद कलियुगाब्द २६११ में उसी यूनानी जंत्री के प्रभाव में सौर वर्ष को आदर्श मानकर महीनों का ऋतु के अनुसार व्यवहार करने के लिए **चान्द्रवर्ष में अधिक मास योजना** को स्वीकार किया।

यहाँ यह बात ध्यान में रखने वाली है कि, **राजा न्यूमा पाम्विलियास** के समय से ही वर्ष का समापन दिसम्बर महीने के स्थान पर फरवरी महीने की समाप्ति से होने लगा। इस संशोधन के बाद भी रोम का धर्माचार्य संघ राजनीतिक उद्देश्य से आवश्यकता अनुसार वर्ष की संख्या कम या ज्यादा कर लेता था। इस त्रुटि के कारण रोम के **राजा जूलियस सीजर** ने कलियुगाब्द २९५६ में देखा कि रोमीय जंत्री का वर्ष वास्तविक वर्ष से तीन महीने तक पीछे चल रहा है, और ऋतु व्यवस्था भ्रष्ट हो गयी है। इसलिए उसने अपने ज्योतिषी **सोसीजेनिसेन** के साथ परामर्श करके रोमीय वर्ष में ९० दिन जुड़वाकर वह वर्ष ३५५+९०=४४५ दिन का किया। उसी समय भविष्य में दोष-निवारण के लिए उसने भविष्य के सभी वर्षों को ३६५ दिन ६ घंटे का किये जाने की व्यवस्था की। जो प्रतीयमान सौर वर्ष के लगभग समकक्ष होता है। उसके लिए तीन वर्ष तक प्रत्येक वर्ष ३६५ दिन का मानकर चौथे वर्ष एक दिन जोड़कर ३६६ दिन का करने की व्यवस्था की गयी। इस चौथे वर्ष में एक दिन जोड़ने की व्यवस्था फरवरी महीने में की गयी। इस प्रकार से चौथा वर्ष अधिक दिवस वर्ष के रूप में हुआ। **जूलियस सीजर** का जन्म रोमीय जंत्री के पाँचवे महीने "**क्विंटिलियस**"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में १२वें दिन हुआ था। इसलिए उसने इस महीने का नाम अपने नाम के ऊपर **जुलाई** रख दिया। इसी प्रकार से **रोम का राजा अगस्टस** छठे महीने **''सिक्सटिलिस''** को अपने लिए शुभ मानता था। इसलिए उसने इसका नाम बदल कर अपने नाम के ऊपर **अगस्ट** रख दिया। **राजा अगस्टस** ने ३६५ दिन का सामान्य वर्ष और ३६६ दिन का अधिकाह वर्ष माना जो **जूलियस सीजर** द्वारा निर्धारित किया गया था। उसमें महीनों की दिन-संख्या भी निश्चित करने के लिए अंतिम संशोधन किया। उनमें उसकी दृष्टि में जो सात विशिष्ट महीने थे उन्हें ३१ दिनों का किया गया। वे क्रमशः इस प्रकार हैं—

१. **मार्च-** वर्ष का प्रथम महीना जो रोमवासियों के मुख्य देवता मार्च के नाम से था, ३१ दिन का किया गया।

२. **अप्रैल-** सामान्य ३० दिन

३. **मई-** रोमन देवी माईमा के नाम से होने के कारण ३१ दिन

४. **जून-** सामान्य ३० दिन

५. **जुलाई-** राजा जूलियस सीजर रोमीय जंत्री के संशोधक के नाम से होने के कारण ३१ दिन का

६. **अगस्ट-** राजा अगस्टस के स्वयं अपने नाम से होने के कारण ३१ दिन का

७. **सिप्टम्बर-** सामान्य ३० दिन

८. **अक्टूबर-** रोम के प्रथम धर्म सम्मेलन का महीना होने के कारण ३१ दिन

९. **नवम्बर-** सामान्य ३० दिन

१०. **दिसम्बर-** अलबन जंत्री का अंतिम महीना होने से ३१ दिन

११. **जनवरी-** रोम के देवता जेनस के नाम पर रखे जाने के कारण ३१ दिन

१२. **फरवरी-** उक्त क्रम से ७ विशिष्ट महीने ३१ दिन करने के कारण ३६५ के स्थान पर ३६७ दिन का हो रहे वर्ष को व्यवस्थित करने के लिए अन्तिम मास फरवरी २८ दिन का किया। यही फरवरी चौथे अधिकाह वर्ष में २९ दिन किये जाने की व्यवस्था निश्चित कर दी गयी। राजा अगस्टस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के समय तक ही रोम जंत्री के महीनों में परिवर्तन दिखाई देता है। उसके बाद से वर्तमान तक महीनों के नामों में और दिनों में स्थिरता दिखाई देती है।

ईसामसीह के जन्म से ५०० वर्ष बाद छठी शताब्दी में **डायोनीसियस एक्सिग्यूअस** नामक पादरी ने ही तत्कालीन ग्रन्थों के द्वारा मसीह क्राइस्ट के जन्मवर्ष की गणना करके बीते हुए काल को घटाकर ईसवीय वर्ष का जन्मदाता बना। इस प्रकार से नये बने इस ईसवीय वर्ष में भी जूलीय जंत्री के समान ३६५ दिन का वर्ष और चौथा एक अधिकाह दिवस के साथ ३६६ दिन का वर्ष प्रचलित रहा।

जैसा कि स्पष्ट किया गया कि, जूलीय जंत्री में ३६५ दिन ६ घण्टे का वर्ष स्वीकार किया गया है, किन्तु यह वर्ष आर्तव सौरवर्ष से ११मिनट १४सेकेण्ड अधिक है। यह आधिक्य ४०० वर्षों में तीन दिनों से भी ज्यादा हो जाता है। इस दोष पर **१३वें ग्रेगरी महोदय** के द्वारा सूक्ष्मता से विचार किया गया। उसने ईसवीय सन् १५८२ में गणित करने पर पाया कि ३२५ ईसवीय वर्ष में सम्पन्न धर्म सम्मेलन से यह आधिक्य दस दिन का हो गया है। उसने गणना करके देखा कि जहाँ १५ अक्टूबर होना चाहिए वहाँ पाँच अक्टूबर का व्यवहार किया जा रहा है। इस प्रकार विमर्श करके उसने **''एलायसियस लिलियस''** नामक ज्योतिषी से परामर्श करके १५८२ ईसवीय वर्ष में ५ अक्टूबर के स्थान पर १५ अक्टूबर कर दिया। पुनः यह व्यवस्था भी निश्चित की कि जिस शताब्दी में ४०० संख्या का भाग पूर्ण रूप से न हो उस शताब्दी में अधिकाह वर्ष प्राप्त होने पर भी न किया जाय। ऐसा करने से ४०० वर्षों में १०० स्थलों में ९७ वर्ष ही अधिकाह वर्ष के रूप में स्वीकृत होंगे। इस प्रकार से पोपग्रेगरी द्वारा संशोधित जंत्री की नवीन प्रथा **ग्रेगरी जंत्री और** ग्रेगोरियन कैलेण्डर के नाम से प्रचलित हुई।

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि १७५२ ईसवीय वर्ष से ही पहली जनवरी से नये वर्ष का आरम्भ किया गया। जैसा कि बतला चुके हैं कि, रोम जंत्री में वर्षारम्भ मार्च मास से होता था। ईसा मसीह के जन्म से ५०० वर्ष बाद छठी शताब्दी से **डी ए पादरी** महोदय ने अपनी गणना में मसीह का जन्म २५ दिसम्बर मानकर वहीं से ईसवीय सन् का प्रचार किया। उसको मानकर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ईसवीय सन् की **सातवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक** इंग्लैण्ड में वर्षारम्भ २५ दिसम्बर से माना जाता था। उसके बाद कुछ ईसाई गणितज्ञों ने गणना करके प्राप्त किया कि, मसीह का जन्म अप्रैल मास के चौथे दिनांक हो हुआ था। इसलिए **चौदहवीं शताब्दी से पुनः** इंग्लैण्ड देश में मार्च से वर्षारम्भ स्वीकार किया गया। यह मान्यता इंग्लैण्ड में १७५१ ईसवीय तक प्रचलित थी। मसीह के जन्म के विषय में पुनः गणित के विषय में विविधता के कारण १७५२ ईसवीय वर्ष में ग्रेगोरियन प्रथा के प्रचार और प्रसार के कारण प्रथम जनवरी से वर्षारम्भ स्वीकार किया गया। यही व्यवस्था अब तक प्रचलित है।

११-वैदिक आर्तव मास वर्ष व्यवस्था और रोमीय आंग्ल ख्रिस्ताब्दीय मास वर्ष व्यवस्था की तुलनात्मक समीक्षा

क- वैदिक आर्तव वर्ष का आरम्भ सम्पूर्ण पृथ्वी पर समान रात्रि और दिन के काल वाले उत्तरी गोलार्ध के वासंतिक विषुव जिसे आदि विषुव कहते हैं, से होता है। इस विषुव के समय धरती की सम्पूर्ण प्रकृति भी पुरातन को छोड़ नव-नव कुसुमों, नव-नव किसलयों के द्वारा मधुरस भरित सम्पूर्ण पृथ्वी में समशीतोष्ण रूप सुखद अनुभव कराने वाली चिर नूतनता को प्राप्त कर इस विषुव दिवस से नववर्ष का आरम्भ करती है। पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में मधुमास और वसन्त ऋतु तो वहीं दक्षिणी गोलार्ध में इषमास और शरद ऋतु लोगों को समान सुखदायक होती हैं।

रोमीय ईसवीय ख्रिस्ताब्दीय नववर्ष का आरम्भ जनवरी मास की पहली तारीख से होता है। इस समय **उत्तरी गोलार्ध में शीत ऋतु, तो दक्षिणी गोलार्ध में ग्रीष्म ऋतु** अपनी चरमावस्था पर होती हैं। उत्तरी गोलार्ध में लोग तीव्र ठण्ड से कष्ट का अनुभव करते हुए, तो दक्षिणी गोलार्ध में गर्मी से त्रस्त रहते हुए प्रकृति-विरुद्ध जन परिकल्पित दिनांक से वर्ष का आरम्भ करते हैं।

ख- अपने अक्ष पर २३ अंश २८ कला झुकी हुई व घूमती हुई पृथ्वी दीर्घ वृत्तीय कक्षा में सूर्य की परिक्रमा करती है। इसलिए सूर्य केन्द्र से परिक्रमण कक्षा में समान दिन रात्रि काल वाले विषुव दिवस सम्पादक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्थल, १८० अंश के अंतराल से अर्थात् छ:-छ: महीने के अन्तर से दो आते हैं। जिन पर क्रमशः समान दिन रात वाले दो दिन छ:-छ: महीने के अन्तराल से आते हैं। इन्हें वेदों में क्रमशः **आदि विषुव** और **मध्य विषुव** के नाम से जाता है। आदि विषुव से उत्तरी गोलार्ध में मधुमास, वसंत ऋतु और नववर्ष का आरम्भ होता है। उसी समय दक्षिणी गोलार्ध में इषमास, शरद ऋतु और नववर्ष का आरम्भ होता है। इसके ठीक छ: महीने बाद उत्तरी गोलार्ध में मध्य विषुव आने के साथ इषमास व शरद ऋतु का आरम्भ और वर्ष का मध्य होता है। उसी समय दक्षिणी गोलार्ध में मधुमास और वसंत ऋतु के आरम्भ के साथ वर्ष का मध्य होता है। वेदों में इन दोनों विषुवों पर प्रकृति के साथ-साथ लोगों में भी महोत्सव मनाने का स्पष्ट वर्णन है। और दोनों ही विषुवों के बाद होने वाले प्रथम दिन से नये महीने का आरम्भ होता है। एक विषुव के साथ आने वाला पहला दिन मधुमास का प्रथम दिनांक होता है तो छ: महीने बाद द्वितीय विषुव के साथ आने वाला प्रथम दिन इषमास व शरद ऋतु का प्रथम दिनांक होता है।

इसके विपरीत ईसवीय मास व्यवस्था में वासंतिक विषुव बिन्दु जो प्रायः २१ मार्च में किसी समय आता है, उसके साथ आने वाला प्रथम दिनांक २२मार्च किसी माह का प्रारम्भ नहीं है। इसी प्रकार शारदीय विषुव विन्दु जो प्रायः २३ सितम्बर को किसी समय आता है, यहाँ से भी किसी मास का आरम्भ नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट है कि, इस ईसवीय काल गणना में विषुव को कोई महत्व नहीं दिया गया है।

ग- सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी की दीर्घ वृत्तीय कक्षा के आदि विषुव सम्पादक बिन्दु से ३०-३० अंश के १२ विभाग ही मधुमास आदि १२ आर्तव महीने होते हैं। उनमें भी मध्यविषुव छ:-छ: महीनों के विभाग द्वारा उत्तरावर्त और दक्षिणावर्त नाम से दो विभाग कर देता है। मासों के दो-दो युगलात्मक नाम हैं, जो छ: ऋतुओं को अपने नाम से ही स्पष्ट करते हैं।

इसके विपरीत ईसवीय काल-गणना व्यवस्था में महीनों की व्यवस्था किसी भी निश्चित बिन्दु से नहीं है। १२ महीनों के नाम भी व्यक्तिपरक, संख्या परक और कतिपय कल्पित देवपरक व अव्यवस्थित हैं, जैसे— जुलाई, अगस्त, सितम्बर आदि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

घ- वैदिक आर्तव वर्ष व्यवस्था में पृथ्वी की दीर्घ वृत्तीय कक्षा का आदि विषुव से मध्य विषुव पर्यन्त उत्तरावर्त और मध्य विषुव से आदि विषुव पर्यन्त दक्षिणावर्त नाम के दो भाग होते हैं। उसमें उत्तरावर्तीय कक्षा में दीर्घ वृत्त के फैले हुए आधे भाग में पृथ्वी क्रमशः सूर्य से तीन महीने तक दूर जाती हुई और तीन महीने तक दूर से आती हुई परिक्रमा करती है। इसलिए उत्तरावर्त की अर्धवृत्तीय मार्गात्मक कक्षा में वृद्धि के क्रम से उत्तरावर्तीय तीन महीनों की दिनादि अवधि क्रमशः बढ़ते हुए और वृद्धि के शिखर पर पहुँच कर क्रमशः परिधि की संकोच के क्रम से तीन महीने तक घटते हुए मध्य विषुव तक पहुंचती है। इस क्रम में माधवादि पाँच महीनों की अवधि साढ़े ३० से अधिक होती हुई साढ़े ३१ तक पहुँचती हैं। जिन्हें गणना की सुगमता से ३१ दिन मानना उपयुक्त है। चौथे अधिकाह वर्ष में आदिविषुव के बाद आने वाला प्रथम माह भी ३१दिन का मानना उपयुक्त है। इसी प्रकार पृथ्वी के परिक्रमण मार्गीय दक्षिणावर्तीय कक्षा में जो पृथ्वी के दीर्घ वृत्तीय पक्रिमण मार्ग का अर्धवृत्तीय संकुचित मार्ग है, इसमें अर्धवृत्तीय मार्ग के संकोच के क्रम से इसमें होने वाले छः महीनों की अवधि जो क्रमशः घटती हुई साढ़े ३०दिन से भी कम होती हुई साढ़े २९ दिन तक कम हो जाती है। इन सभी छः महीनों को ३० दिन का मानना उपयुक्त है।

इसके विपरीत ईसवीय महीनों (जनवरी आदि) की ३० या ३१ दिन की कालगणना का कोई भी नियम या कोई भी विज्ञान नहीं है। ३० दिन के और ३१ दिन के महीनों का कोई क्रम भी नहीं है। मास की समाप्ति पर प्रायः लोग आपस में पूछते हैं कि, यह महीना ३० दिन वाला है या ३१ दिन वाला। ७ महीनों का ३१ दिन का करना भी स्पष्ट रूप से मूर्खता है। पुनः वर्षावधि को नियमित करने के लिए फरवरी महीने को २८ दिन या २९ दिन का स्वीकार करना भी अपेक्षा से अधिक पाँच महीनों के स्थान पर सात महीनों को ३१ दिन करने के कारण है। इस प्रकार यह ईसवीय मास व्यवस्था पूर्णतया अवैज्ञानिक और ऋतु विरुद्ध है।

ङ- जैसा कि स्पष्ट किया गया है कि, पृथ्वी के दीर्घवृत्तीय परिक्रमण मार्गीय फैली हुई अर्धवृत्तीय कक्षा में आदि विषुव से क्रमशः सूर्य की परिक्रमा करती हुई, सूर्य से दूर जाती हुई, महीनों की अवधि को बढ़ाती

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हुई, ९०अंश मार्ग को चलकर शुक्रमास के अंतिम दिन, ३१ दिनांक को तदनुसार २१जून को सूर्य से इस परिक्रमण मार्ग के सर्वाधिक दूर उत्तरनाभि को प्राप्त होती है। इस अहोरात्र में पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में सबसे बड़ा दिन और सबसे छोटी रात्रि होती है। इसके ठीक विपरीत दक्षिणी गोलार्ध में सबसे छोटा दिन और सबसे बड़ी रात्रि होती है।

वहाँ से आवर्तन क्रम से शुचिमास के प्रथम दिनांक से तदनुसार ईसवीय २१ जून से ९० अंश मार्ग को चलकर पृथ्वी नभस्यमास के ३१ दिनांक को तत्स्थानीय २३ सितम्बर को मध्य विषुवनाभि को प्राप्त होती है।

यहीं से अर्थात् इषमास के प्रथम दिनांक तत्स्थानीय २३ सितम्बर से ९० अंश के मार्ग में कक्षा के संकोच क्रम से सूर्य की समीपता की ओर परिक्रमा करती हुई संकोच के क्रम से महीने की दिनादि अवधि को घटाती हुई सहमास के अंतिम ३०वें दिनांक तत्स्थानीय २१ दिसम्बर को सूर्य के समीपतम कक्षा में दक्षिण नाभि पर पहुँचती है। इस अहोरात्र में पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में सबसे छोटा दिन और सबसे बड़ी रात्रि होती है। इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्ध में सबसे बड़ा दिन और सबसे छोटी रात्रि होती है।

यहीं से पृथ्वी के परिक्रमा-मार्ग पर आगे बढ़ने के साथ-साथ धीरे-धीरे उत्तरी गोलार्ध में सहस्य मास के प्रथम दिनांक तत्स्थानीय ईसवीय २२दिसम्बर से प्रत्येक अहोरात्र में दिन थोड़ा-थोड़ा बढ़ता है, और रात्रि थोड़ी थोड़ी घटती है। यही पहला बढ़ता हुआ दिन अर्थात् बड़ा दिन है, न कि २५ दिसम्बर। २५ दिसम्बर को बड़ा दिन कहना पूरी तरह गलत है। वह ईसामसीह का विवादित जन्मदिन हो सकता है, किन्तु बड़ा दिन नहीं। यहीं से सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी अपने परिक्रमा मार्ग पर धीरे-धीरे आगे बढ़ती हुई दीर्घवृत्तीय परिक्रमा मार्ग के फैलाव के क्रम से सूर्य से दूर जाती हुई, ९० अंश मार्ग को चलकर तपस्यमास के अंतिम ३०वें दिनांक तत्स्थानीय २१मार्च को आदि विषुव पर पहुँचती है। यह वर्ष का समाप्ति दिवस है। इसी दिन मध्यरात्रि में वर्ष की समाप्ति पर वर्ष के अंतिम संस्कार रूप होलिका दहन की मूल वैदिक परंपरा रही। मध्यरात्रि से ही नववर्ष का आरम्भ मानकर यहीं से अगला प्रथम दिन जो मधुमास का प्रथम दिनांक है, को नववर्ष का आरम्भ उत्सव या वैदिक विषुव महोत्सव या सम अहोरात्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्सव या होरा महोत्सव या रंगोत्सव मनाया जाता है। ईसवीय सन् का यह २२ मार्च होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रमुख चार अहोरात्रों में किसी पर भी ईसवीय मासों का समापन और आरम्भ नहीं होता है, अतः ईसवीय मासों का आरम्भ और वर्ष का भी आरम्भ पूर्णतया अवैज्ञानिक है। केवल वर्ष की कालावधि को महीनों के दिनों की संख्या को बिना किसी तारतम्य के जोड़-घटाकर शुद्ध कर लिया गया है। इसके विपरीत वैदिक आर्तव महीनों का समापन और आरम्भ चारों मुख्य नाभियों से होता है- क्रमशः आदि विषुवनाभि, उत्तरनाभि, मध्य विषुवनाभि, और दक्षिणनाभि। नववर्ष का आरम्भ आदि विषुवनाभि से, और वर्ष का मध्य, मध्य विषुवनाभि पर होता है। वैदिक आर्तव वर्ष की काल अवधि तो पूर्णतया शुद्ध है ही, साथ ही अपरिवर्तनीय प्राकृतिक विज्ञान पर आधारित है, **वैदिक कालचक्र।**

च- वैदिक आर्तव वर्ष का काल आदिविषुव से प्रारम्भ कर उसी आदिविषुव पर्यन्त ३६५ दिन पाँच घण्टा ४८ मिनट ४६ सेकेण्ड होता है। यहाँ यह आदि विषुव दिवस ही, जिसे वेदों में विषुवान् भी कहा गया है, संवत्सर की कालावधि का स्पष्ट निर्धारक है। वही संवत्सर का समापक और नवसंवत्सर का आरम्भक है। यही चौथे वर्ष अधिक दिवस की गणना के द्वारा अधिकाह वर्ष का निश्चायक है। १२८ वर्षों के बाद अधिक दिवस की अप्राप्ति का निर्धारक भी यह आदि विषुव दिवस ही है। संवत्सर काल की शुद्धता का मूल यह विषुव दिवस ही है। इसलिए वैदिक काल में विषुव महोत्सव और संवत्सर याग प्रचलित थे।

वर्तमान काल में ईसवी सन् का भी आदर्शमान ३६५ दिन ५ घ. ४८मि. ४६ से. ही है। किन्तु वहाँ वर्ष का आरम्भ एक जनवरी से होता है, न कि सम अहोरात्र कालिक विषुवदिवस से। आदिविषुव २१ मार्च को और मध्यविषुव २३ सितम्बर को प्रायः होता है। किन्तु वहाँ से न तो ईसवी नववर्ष का आरम्भ होता है न ही वर्ष की समाप्ति। और न ही ईसवी काल गणना में इस विषुव दिवस का कोई राजनीतिक अथवा धार्मिक महत्व है। न ही उत्तरनाभि के २१ दिसम्बर को ईसवी वर्ष का समापन व आरम्भ ही होता है, न ही इन तिथियों में उनका कोई महोत्सव होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राकृतिक संवत्सर आरम्भक विषुव दिवस का ईसवीय काल गणना में कोई महत्व न होने के कारण १५८२ ईसवीय वर्ष में रोम पादरी ग्रेगोरीयन महोदय ने देखा कि ३२५ ईसवीय वर्ष से वार्षिक आदर्श मान की दृष्टि से हमारी काल गणना १० दिन अन्तर से चल रही है। इसलिए उसके संशोधन हेतु उन्होंने ५ अक्टूबर के स्थान में १५ अक्टूबर करा दिया। पुनः १२८ वर्ष के अन्तराल में प्राप्त अधिकाह वर्ष में अधिक वर्ष की पूर्ति के अभाव को संशोधित करने के लिए ऐसी नवीन व्यवस्था दी कि, जिस शताब्दी में ४०० की संख्या का भाग निःशेष न हो, उस शताब्दी में प्राप्त अधिकाह वर्ष को अधिकाह न किया जाय। इस व्यवस्था के बाद भी ३५४६ वर्ष के बाद इस प्रक्रिया के दोष के कारण एक दिन का अन्तराल हो जायेगा। अतः यह स्पष्ट है कि, वार्षिक आर्तव वर्ष व्यवस्था की विशुद्धि के लिए विषुव दिवस ही समर्थ है। वहीं से वर्षारम्भ करना श्रेष्ठतम कालगणना का विज्ञान है।

छ- ईसवीय कालगणना के आरम्भ का मानक वर्तमान में क्राइस्ट का जन्म वर्ष ही है। जब कि क्राइस्ट का जन्मदिन आज तक सुनिश्चित नहीं है। कुछ लोग २५ दिसम्बर को उनका जन्मदिन मानते हैं, तो कुछ लोग ४ अप्रैल को उनका जन्मदिन कहते हैं। प्रकृति में किसी व्यक्ति के जन्म से कोई परिवर्तन नहीं होता है, अपितु प्रकृति के अनुसार लोक में परिवर्तन होता है।

वैदिक आर्तव वर्ष का आरम्भ कल्प के आरम्भ से होता है। उसमें युगाब्द लघुतम मानक है। वह विषुव सम्पात् पर ग्रहों की युति के साथ आरम्भ होता है। इस गणना का भारत वर्ष में दैनिक संकल्प में दैनिक प्रयोग अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। इसलिए इसका ऐतिहासिक महत्व और अन्य सभी काल गणनाओं की अपेक्षा इसकी अधिकतर शुद्धता सिद्ध होती है। आर्यभट्ट ने अपनी ग्रंथ आर्यभटीय में इसी का उल्लेख किया है।

१२-विमर्श से प्राप्त निष्कर्ष

यहाँ वैदिक ज्ञान से और वैज्ञानिक तर्क से यह स्पष्ट हुआ कि, काल गणना का दो प्रकार का वैज्ञानिक स्वरूप है। उसमें पृथ्वी के परिक्रमण एवं घूर्णन गति से उत्पन्न होने वाली आर्तव दिन, मास, वर्ष व्यवस्था ही **प्रथम**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्यवस्था है। रात्रि में चन्द्रकलाओं के द्वारा दिखाई पड़ने वाली रात्रि के परिगणन के लिए उपयुक्त नाक्षत्र चान्द्र तिथि, मास, वर्ष व्यवस्था, **दूसरी व्यवस्था** है। उसमें प्रथम गणना का विशुद्ध स्वरूप, विषुव दिवस से आरम्भ करके, मधुमास आदि १२ मासों के द्वारा, वसंत आदि छः ऋतुओं के द्वारा, आदिविषुव से मध्य विषुव के बीच विभक्त उत्तरावर्त और दक्षिणवर्त रूप दो आवर्तों के द्वारा, विषुवनाभि, उत्तरनाभि एवं दक्षिणनाभि रूप तीन नाभियों के द्वारा भलीभाँति शोधित, केवल वेदों में ही दिखाई देती है। इस वैदिक व्यवस्था का विशुद्ध वार्षिक काल ईसवी वर्ष व्यवस्था में भी आदर्श मान के रूप में स्वीकार किया गया दिखाई देता है। किन्तु वहाँ मास का स्वरूप और वर्ष का आरम्भ पूर्णतया अवैज्ञानिक है। अधिकाह वर्ष में अधिक दिवस का नियोजन भी, विषुव दिवस पर न होने के कारण अवैज्ञानिक ही है। किन्तु वैदिक आर्तव काल चक्र का ज्ञान, वर्तमान वैज्ञानिकों को न होने के कारण, यह ईसवीय काल गणना ही अन्तरराष्ट्रिय हो गयी है।

चन्द्रकलाओं के द्वारा रात्रि में दिखाई पड़ने वाली गणना योग्य **द्वितीय व्यवस्था** प्रमुख रूप से भारतीय पञ्चांगों में, और मुस्लिमों में दिखाई पड़ती है, वहाँ मुसलमानों में रात्रि में प्रथम चन्द्रदर्शन से आरम्भ कर चन्द्रदर्शन के पूर्णतया अभाव पर्यन्त एक चान्द्र मास स्वीकार किया गया है। पुनः चन्द्रदर्शन से ही नूनत मास का आरम्भ होता है। वे पूर्ण दिन की गणना रात्रि में प्रथम चन्द्रदर्शन से आरम्भ कर उसके ठीक बाद आने वाले दिन की समाप्ति पर्यन्त करते हैं। अर्थात् रात्रि से आरम्भ कर दिवस पर्यन्त एक दिन गिनते हैं। हिन्दू पञ्चांगों में द्वितीया तिथि को चन्द्रमा का दर्शन होता है, मुसलमान उसी द्वितीया तिथि को चन्द्रमा के दिखने के कारण पहली गिनते हैं और पूर्णिमा को चौदहवीं कहते हैं। क्रमशः उसके आगे कृष्णपक्ष की तिथियों को पन्द्रहवीं-सोलहवीं आदि गिनते हुए उनतीसवीं अथवा तीसवीं को चन्द्र न दिखने वाली अन्तिम तिथि को महीना समाप्त मानते हैं। पुनः चन्द्रमा के दिखने के साथ नये महीने का आरम्भ मानते हैं। इस प्रकार से १२ चान्द्रमासों का उनका एक हिजरी वर्ष होता है। उसका मान ३५४ दिन ८ घंटा ४८ मिनट ३८ सेकेण्ड होता है। उनका यह हिजरी चान्द्रवर्ष मान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आर्तव वैदिक सौर वर्ष से १० दिन २२ घंटा ८ सेकेण्ड कम होता है। इसलिए उनके वार्षिकोत्सव प्राय: आर्तव सौर वर्ष से ११ दिन पहले ही आ जाते हैं। साढ़े ३२ महीनों में ऋतुएँ एक महीने के अंतर से हो जाती हैं। और १६ वर्ष ४ महीने में **ग्रीष्म ऋतु** का महीना **शीत ऋतु** में और **शीत ऋतु** का महीना **ग्रीष्म ऋतु** में चला जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मुसलमानों की चान्द्रमास व्यवस्था अत्यन्त स्थूल और ऋतुविज्ञान से रहित है। वह केवल मूर्खतापूर्ण धार्मिक आस्था के कारण चल रही है। उसमें किसी भी प्रकार का कोई विज्ञान नहीं है।

भारतीय पञ्चांगों में प्रचलित चान्द्रमास व्यवस्था उस प्रकार की नहीं है, अपितु अतीव सूक्ष्म वैदिक नाक्षत्र विज्ञान पर आधारित नाक्षत्र सौर वर्ष में परिणत होती रहने वाली कालगणना ही द्वितीय वैज्ञानिक वैदिक व्यवस्था है। जिस पर पूर्व में ही भलीभाँति विमर्श किया गया है।

इन दोनों मूल प्राकृतिक वैज्ञानिक वैदिक व्यवस्थाओं में से प्रथम आर्तव वैदिक वर्ष व्यवस्था, किसी समय उसकी मौलिक गणितीय व्यवस्था के नष्ट हो जाने के कारण, मध्यकाल में समय बीतने के साथ चान्द्र नाक्षत्र मासों की ही प्रमुखता होने से लुप्तप्राय हो गयी। वर्तमान पञ्चांगों में आर्तव वैदिक व्यवस्था का **मूल विषुवदिवस,** उसमें भी **पहले आदिविषुव दिवस** और **दूसरे मध्य विषुव दिवस** का कहीं उल्लेख तक नहीं रहता है। आदिविषुव दिवस से आरम्भ होने वाली वसंत आदि ऋतुओं का, मधुमाधवादि मासों का नाम भी भारतीय पञ्चांगों में कहीं दिखाई नहीं पड़ता। अपितु लोग केवल इतना जानते हैं कि, दिन और रात्रि की बराबरी वाला दिन २१ मार्च और २३ सितम्बर को होता है। और वह ईसवीय कालगणना में होता है।

वे यह नहीं जानते हैं कि, **"सम रात्रि और दिन काल वाले दोनो दिवस वैदिक विषुव दिवस हैं। वे दोनों क्रमशः आदिविषुव और मध्य विषुव के नाम से सभी वेदों में प्रसिद्ध श्रेष्ठतम दिन हैं। आदिविषुव से नव वर्ष का, वसंत ऋतु का और मधुमास का आरम्भ होता है। मध्यविषुव पर वर्ष का मध्य होता है, साथ ही शरद ऋतु का और इषमास का आरम्भ होता है। वेदों में ये दोनों आदि विषुव और मध्य विषुव महोत्सव के रूप में वर्णित हैं।"**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

केवल इतना ही नहीं वर्तमान भारतीय पञ्चांगों में नाक्षत्र सौर वर्ष गणना ही दिखाई देती है, न कि मूल वैदिक आर्तव सौर मास वर्ष व्यवस्था। जैसा कि पहले ही विमर्श किया गया कि वैदिक नक्षत्र मंडल के 'भ चक्र' का मध्यकालीन ज्योतिषियों ने मेषादि १२ राशि विभाग भी दिखाई पड़ने वाले नक्षत्रों की कल्पित आकृतियों के आधार पर परिकल्पित कर दिया। वे मेष, वृष आदि द्वादश राशियाँ पहले ही स्पष्ट रूप से वर्णित कर दी गयी हैं। वहीं से वैदिक आर्तव महीनों के स्थान पर नाक्षत्र सौर गणना प्रचलित हो गयी। यद्यपि वैदिक नाक्षत्र चान्द्र पूर्णिमा कला से महीनों का नामकरण होने के कारण उसी आधार पर व्यवस्थित अधिक मास और क्षयमास व्यवस्था के कारण, चान्द्र वर्ष पूर्व वर्णित क्रम के अनुसार नाक्षत्र सौर वर्ष में परिणत होता रहता है। इस प्रकार इस नाक्षत्र चान्द्र सौर वर्ष सुव्यवस्था के रहते हुए अलग से नाक्षत्र सौर वर्ष की स्वतंत्र गणना का अनार्तव होने के कारण कोई प्रयोजन नहीं था। यह सब वैदिक ऋषिओं को स्पष्ट था। इसीलिए वेदों में कहीं भी नक्षत्र मंडल का द्वादश राशि विभाग नहीं दिखाई देता। विषुव दिवस की ही वहाँ प्रमुखता दिखाई देती है। विषुवनाभि, उत्तरनाभि और दक्षिणनाभि रूप तीन नाभियाँ ही काल चक्र ज्ञापक मंत्र में स्पष्ट रूप से उद्घोषित हैं।

वैदिक ऋषिओं को स्पष्ट, वैदिक आर्तव वर्ष और नाक्षत्र वर्ष का भेद, मध्यकालीन ज्योतिषियों को अयन गति का स्पष्ट बोध न होने के कारण उन्होंने वैदिक आर्तव मधुमास आदि महीनों को छोड़कर मेषादि द्वादश नाक्षत्र राशि नामों को प्रचलित कर दिया। इस प्रकार से विशुद्ध वैज्ञानिक आदिविषुव महोत्सव के स्थान में मेष संक्रान्ति, और मध्य विषुव के स्थान में तुला संक्राति प्रचलित कर दी। उसी प्रकार उत्तर नाभि के स्थान में कर्क संक्रान्ति तथा दक्षिण नाभि के स्थान में मकर संक्रान्ति को प्रचारित किया। मूलतः आदि विषुव से उत्तरावर्त और मध्य विषुव से दक्षिणावर्त उसी प्रकार दक्षिण नाभि से उत्तरायण और उत्तरनाभि से दक्षिणायन का आरम्भ होता है। किसी समय किसी वर्ष में आदि विषुव पर अश्विनी नक्षत्र को देखकर वहीं से यह राशि एवं संक्रान्ति व्यवस्था चलायी गयी। तब से अब तक विषुव नाभि से मेष संक्रान्ति में २४अंश से भी ज्यादा का अंतर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हो गया है। इसलिए मेष संक्रान्ति आदि विषुव के २४वें या २५वें दिन पड़ती है।

वस्तुतः नाक्षत्र चान्द्रमासों के द्वारा नाक्षत्र सौर वर्ष व्यवस्था ही चलती है, और वह भी वैदिक है किन्तु प्रमुख वैदिक आर्तव मास, वर्षव्यवस्था के स्थान में सांक्रान्तिक नाक्षत्र राशि मास, वर्ष-व्यवस्था तो अवैदिक अनार्तव, अवैज्ञानिक भ्रान्तिपूर्ण है। यदि कुछ लोगों को मेष आदि नाक्षत्र राशियों से बहुत लगाव हो और वे इस व्यवस्था को चलाना चाहते हों तो चलायें। किन्तु वे पञ्चांगों में मेष संक्रान्ति से उत्तरावर्त, तुला संक्रान्ति से दक्षिणावर्त, मकर संक्रान्ति से उत्तरायण तथा कर्क संक्रान्ति से दक्षिणायन लिखकर मिथ्याचरण के द्वारा भ्रान्ति न फैलायें। क्योंकि यह सब क्रमशः आदि विषुव, मध्य विषुव, दक्षिण नाभि और उत्तरनाभि से ही आरम्भ होते हैं।

देश के स्वतंत्र होने पर देश के कुछ महत्वपूर्ण कर्णधारकों ने जो परम देश भक्त लोकमान्य गंगाधर तिलक से प्रभावित थे विमर्श कर भारतीय पञ्चांग निर्माण समिति का उस समय के श्रेष्ठ अंतरिक्ष वैज्ञानिक मेघनाथ साहा की अध्यक्षता में गठन किया। इस समिति ने राष्ट्रीय दिनांक के रूप में विषुव से आरम्भ होने वाली कालगणना को स्वीकार किया। किन्तु वे वैदिक काल गणना के समग्र स्पष्ट वैदिक स्वरूप को नहीं समझ सके। इसलिए उन्होंने वैदिक मधुमास आदि नामों के स्थान पर नाक्षत्र चान्द्र पूर्णिमा आधारित चैत्र आदि चान्द्रमासों का ही नाम लिख दिया। जो अत्यन्त भ्रामक है। चान्द्रमासों के नाम चान्द्र नाक्षत्र पूर्णिमा कला के आधार पर किये गये है। सम्पूर्ण समाज उनसे रात्रि में होने वाली चन्द्रकलाओं का ही परिगणन करता है। न कि आर्तव वैदिक मासों का। चैत्र तो उसी महीने को कहा जाता है, जब चित्रा नक्षत्र पर चन्द्रमा की पूर्णिमा कला हो न कि अन्यत्र कहीं भी। इसी प्रकार मधुमास तो आदिविषुव से होने वाले प्रथम दिन से प्रारम्भ होता है, वह वसंत ऋतु का पहला महीना है। चैत्र रात्रि में चन्द्रमा की कला को दर्शाता है। मधुमास पुष्पित, विकषित, मधुरसभरीत, समशीतोष्ण वसंत ऋतु का ज्ञान कराता है। इस प्रकार से **यह दानों वैज्ञानिकी व्यवस्थायें सहचरी होने पर भी दिन और रात्रि का अलग-अलग परिगणन करने वाली भिन्न-भिन्न**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हैं। प्रथम व्यवस्था दिन और ऋतु को दर्शाती है, तो दूसरी व्यवस्था रात्रि में चन्द्रमा की कलाओं को।

वैदिक व्यवस्था के सम्यक् ज्ञान के अभाव के कारण विविध पञ्चांगों के निर्माता अपने-अपने पञ्चांगों को भी विविध दोषों से दूषित करते हैं। जैसे गणेश आपा, हृषिकेष आदि पञ्चांगों में आदि **विषुवनाभि** के स्थान पर "**दृश्यः मेषेऽर्कः**" ऐसा लिखते हैं। वस्तुतः वहाँ पर मेषराशि पर सूर्य नहीं दिखते, अपितु वहाँ से २४वें या २५वें दिन मेष राषि पर सूर्य दिखते हैं। इस प्रकार वहाँ यह "**दृश्यः मेषेऽर्कः**" लिखना पूर्ण रूप से मिथ्या है। वहाँ "**आदिविषुवनाभौ अर्कः**" ही लिखना चाहिए। उसी प्रकार से आगे **माधवेऽअर्कः**, मास सम्पात् काल, आदि ही लिखना चाहिए। छः महीने के बाद आये मध्य विषुव नाभि के स्थान पर "**दृश्यः तुलायामर्कः**" लिखना भी भ्रान्ति ही है। वहाँ स्पष्ट रूप से "**मध्यविषुवनाभौ अर्कः**" ही लिखना चाहिए। इसी प्रकार से **राष्ट्रिय चैत्रमासारम्भः** के स्थान पर "**मधुमासारम्भः**" इत्यादि ही लिखना चाहिए।

इसी प्रकार से आदित्य पञ्चांग में मीन संक्रान्ति के दूसरे दिन "**सौरचैत्र मासारम्भः**" ऐसा लिखते हैं। यह तो पूरी तरह अशुद्ध है, क्योंकि उस महीने में चित्रा नक्षत्र पर पूर्णिमा कला नहीं होती और न ही चित्रा नक्षत्र पर सूर्य ही होते हैं। उन्हें "**मीने रविः**" इतना ही लिखना चाहिए, अथवा मीन संक्रान्ति मास लिखना चाहिए। इसी पञ्चांग में, इसी पंक्ति में, "**वसंत ऋतु प्रारंभः**" यह भी लिखा जाता है जो सही नहीं है। क्योंकि वहाँ विषुव प्राप्त नहीं हुआ है। और उत्तरी गोलार्ध में वसंत का आरंभ आदिविषुव से ही होता है, यह तथ्य वेदों में स्पष्ट है। ऋग्वेद में जब छः ऋतुओं के स्थान पर पाँच ही ऋतुएँ मानी जाती हैं तो विषुव से ४० दिन पूर्व वसंत का आरंभ माना जाता है। और शिशिर ऋतु के शेष २० दिन हेमन्त ऋतु में ही जुड़ जाते हैं। इस प्रकार शिशिर ऋतु के २० दिन हेमन्त में और ४० दिन वसंत में मिल जाने से केवल पाँच ऋतुएँ होती हैं। इस क्रम में २१ तपमास से वसंत का आरम्भ होता है। वर्तमान में नाक्षत्रचान्द्र मासों की प्रमुखता होने के बाद इसी मूल वैदिक परम्परा के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुकरण में विषुव महोत्सव स्थानीय होलीकोत्सव से ४० दिन पूर्व वसंत पञ्चमी मनाते हैं। जिसकी विस्तृत विवेचना पहले ही की गयी है। इस प्रकार वैदिक काल गणना की समग्र मीमांसा से यह यह स्पष्ट होता है कि—

वस्तुतः दो प्रकार की वैदिक वैज्ञानिक कालगणना में पहली आदि विषुव से आरम्भ होकर मधुमास आदि १२ महीनों के द्वारा, वसंत आदि छः ऋतुओं के द्वारा, सम्पन्न प्राकृतिक आर्तव काल गणना ही मुख्य है। और दूसरी रात्रि में चन्द्रमा के स्वरूप का ज्ञान कराने वाली रात्रि में आह्लादकारी पूर्णिमा चान्द्रकला प्रधान पहली की सहचरी व अनुचरी सामान्य व्यवस्था है। किन्तु दुर्भाग्य से मध्य काल से भारतीय पञ्चांगों में द्वितीय सहचरी व अनुचरी गौण व्यवस्था ही अवशिष्ट दिखती है। पहली मुख्य तो छूट कर विस्मृत ही हो गयी। इस कारण से ईसवीय काल गणना, अवैज्ञानिक मास व्यवस्था वाली होने पर भी, वैज्ञानिक विषुव दिवस से आरम्भ न होने पर भी, केवल वार्षिक काल अवधि में वैदिक व्यवस्था की समता को पाकर, प्रमुख व अन्तरराष्ट्रिय हो गयी। इसका कारण है–वर्तमान भारतीय ज्योतिर्विदों की वैदिक मूल में आस्था की कमी, मूल वैदिक कालचक्र को प्राप्त करने वाली गवेषणात्मिका निष्ठा की कमी और ज्योतिष विद्या को केवल अपनी लोभी मानसिकता से मात्र अर्थकरी बना लेना और वैदिक काल चक्र को न समझना ही है। इसलिए भारत वर्ष में और न केवल भारत वर्ष में ही अपितु सम्पूर्ण विश्व में श्रेष्ठतम प्राकृतिक आर्तव वर्ष विज्ञान के लिए वैदिक काल चक्र ही ग्राह्य है।

***

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सन्दर्भित व सहायक ग्रन्थ-सूची

क्र.सं.	ग्रन्थनाम	लेखक/संपादक/प्रकाशक	प्रकाशन
१ (क)	ऋग्वेद-संहिता माधवीयवेदार्थप्रकाशसहित,	सायणाचार्य, श्रीमोक्षमूलरभट्ट, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी	१९८३.
(ख)	ऋग्वेद-संहिता	श्रीपाददामोदरसातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल पारडी, बलसाड, गुजरात	१९८५.
(ग)	ऋग्वेद भाषाभाष्य	पं. राकेशरानी, दयानन्द संस्थान दिल्ली।	
२ (क)	शुक्लयजुर्वेदमाध्यन्दिन संहिता	उव्वट के मन्त्रभाष्य और महीधर के वेददीपभाष्यसहित, सम्पादक जगदीशलाल शास्त्री, प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	१९९९.
(ख)	यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता	श्रीपाददामोदरसातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल पारडी, बलसाड, गुजरात	१९८५.
(ग)	ऋग्वेद भाषाभाष्य	पं. राकेशरानी, दयानन्द संस्थान दिल्ली।	
३ (क)	यजुर्वेद-काण्व संहिता	श्रीपाददामोदरसातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल पारडी, बलसाड, गुजरात	१९४०.
(ख)	शुक्लयजुर्वेद काण्वसंहिता	सायणाचार्यस्य माधवीयवेदार्थ प्रकाशसहित सं. डॉ. भगीरथ प्रसाद त्रिपाठी, (वागीशशास्त्री), प्र. संस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी	१९७८.
४ (क)	सामवेद संहिता	श्रीपाददामोदरसातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल पारडी, बलसाड, गुजरात	१९८५.
(ख)	सामवेद-भाषाभाष्य	पं. राकेशरानी, दयानन्द संस्थान, दिल्ली।	
५ (क)	अथर्ववेदसंहिता,	शंकरपाण्डुरंगपंडित, सायणाचार्य माधवीयवेदार्थ प्रकाश सहित कृष्णदास अकादमी, वाराणसी	१९८९.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

	(ख) अथर्ववेदसंहिता,	श्रीपाददामोदरसातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल पारडी, बलसाड, गुजरात	१९८५.
	(ग) अथर्ववेद-भाषाभाष्य	पं. राकेशरानी, दयानन्द संस्थान दिल्ली।	
६	कृष्णयजुर्वेदीय-तैत्तिरीयसंहिता,	श्रीपाददामोदरसातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल पारडी, बलसाड, गुजरात	१९५८.
७	कृष्णयजुर्वेदीय-काठक संहिता,	श्रीपाददामोदरसातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल पारडी, बलसाड, गुजरात	१९५८.
८	कृष्णयजुर्वेदीय-मैत्रायणीसंहिता,	श्रीपाददामोदरसातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल पारडी, बलसाड, गुजरात	१९५८.
९	(क) ऐतरेयब्राह्मण, सायणभाष्यसमेत	सत्यव्रतसामाश्रमी, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता (बंगाल)	१९०६.
	(ख) ऐतरेयब्राह्मण	नागप्रकाशक, दिल्ली	१९७१.
१०	कौषीतकि-ब्राह्मण	बी. लिंडर जेना	१९८७.
११	शाङ्खायन-ब्राह्मण	गुलाबराय, आनन्दाश्रम, पूना	१९९१.
१२	(क) शतपथब्राह्मण	सायणभाष्यसहित, नाग प्रकाशक, दिल्ली	१९९०.
	(ख) शतपथब्राह्मण	माध्यन्दिनीय, अजमेर	१९०३.
१३	तैत्तिरीय-ब्राह्मण सायणभाष्यसहित,	नारायणशास्त्री, आनन्दाश्रम, पूना	१८९९.
१४	ताण्ड्यमहाब्राह्मण, सायणभाष्यसहित,	चौखम्भासंस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली	१९८९.
१५	दैवतब्राह्मण तथा षडविंश-ब्राह्मण सायणभाष्यसहित,	जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता,	१८८१.
१६	मन्त्रब्राह्मण	सत्यव्रतसामाश्रमी, कलकत्ता	१८९१.
१७	संहितोपनिषद् ब्राह्मण	ए.सी. बर्नेल मंगलोर,	१८७७.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१८	आर्षेयब्राह्मण	ए.सी. बर्नेल मंगलोर,	१८७७.
१९	वंशब्राह्मण	सत्यव्रतसामाश्रमी, कलकत्ता	१८९३.
२०	सामविधानब्राह्मण सायणभाष्यसहित	केन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठ, तिरुपति	१९८५.
२१	जैमिनि उपनिषद् ब्राह्मण	हंस अर्टेल, देवनागरी, संस्करण	१९२१.
२२	जैमिनि आर्षेय ब्राह्मण	ए.सी. बर्नेल मंगलोर	१८७८.
२३	गोपथब्राह्मण	सुश्री प्रज्ञादेवी, मेधादेवी, डॉ. इन्द्रदयालसेठ, अथर्ववेदभाष्य कार्यालय, इलाहाबाद	१९७७.
२४	ईशावास्योपनिषद्	शाङ्करभाष्य, गीताप्रेस, गोरखपुर	१९८५.
२५	केनोपनिषद्	,, गीताप्रेस, गोरखपुर	१९८५.
२६	कठोपनिषद्	,, गीताप्रेस, गोरखपुर	१९८५.
२७	प्रश्नोपनिषद्	,, गीताप्रेस, गोरखपुर	१९८५.
२८	मुण्डकोपनिषद्	,, गीताप्रेस, गोरखपुर	१९८५.
२९	माण्डूक्योपनिषद्	,, गीताप्रेस, गोरखपुर	१९८५.
३०	तैत्तिरीयोपनिषद्	,, गीताप्रेस, गोरखपुर	१९८५.
३१	ऐतरेयोपनिषद्	,, गीताप्रेस, गोरखपुर	१९८५.
३२	छान्दोग्योपनिषद्	,, गीताप्रेस, गोरखपुर	१९९४.
३३	बृहदारण्यकोपनिषद्	,, गीताप्रेस, गोरखपुर	१९९४.
३४	श्वेताश्वतरोपनिषद्	,, गीताप्रेस, गोरखपुरं	१९८५.
३५	उपनिषद्संग्रह	(१८८ उपनिषत्संग्रह) मोतीलाल बनारसीदास,	१९८५.
३६	आपस्तम्बीय श्रौतसूत्र	प्राच्यविद्यासंशोधनालय मैसूरविश्वविद्यालय, मैसूर	१९६०.
३७	आपस्तम्बगृह्यसूत्र	प्राच्यविद्यासंशोधनालय, मैसूर मैसूरविश्वविद्यालय, मैसूर	१९८७.
३८	बोधायनगृह्यसूत्र	प्राच्यविद्यासंशोधनालय, मैसूर मैसूरविश्वविद्यालय, मैसूर	१९८३.
३९	निरुक्त (निघण्टु)	यास्काचार्य प्रणीतम्, कलकत्ता, गुरुमण्डलग्रन्थमाला	१९५२.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४०	निरुक्त	यास्कमुनिप्रणीत, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, नई दिल्ली	१९८२.
४१	पाणिनीय-अष्टाध्यायी	अनीता आर्ष प्रकाशन, पानीपत, हरियाणा	१९९०.
४२	उणादिकोष	युधिष्ठिरमीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत (हरियाणा)	१९७४.
४३	शिक्षासूत्राणि	(आपिशलि पाणिनि-चन्द्रगोमिविरचितानि) युधिष्ठिरमीमांसक,	१९८३.
४४	पाणिनीय धातुपाठ	रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत (हरियाणा),	१९७५.
४५	व्याकरणमहाभाष्य	पतञ्जलिमुनिप्रणीत चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली	१९९७.
४६	वाक्यपदीय	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी	
४७	अमरकोश रामाश्रमी टीकायुक्त	चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान	१९८४.
४८	शिवतंत्त्वरत्नाकर	प्राच्यविद्यासंशोधनालय मैसूर	१९६४.
४९	महाभारत	वेदव्यास, गीताप्रेस, गोरखपुर	१९८९.
५०	श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य, गीताप्रेस, गोरखपुर		१९८९.
५१	श्रीमद्भगवद्गीता रामानुजभाष्य, गीताप्रेस, गोरखपुर		१९८९.
५२	महाभारत खिलभाग (श्रीहरिवंशपुराण)	गीताप्रेस, गोरखपुर	१९८९.
५३	वेदांगज्योतिष	महर्षि लगधकृत अन्तर्गत भारतीय ज्योतिष शिवनाथ झारखंडीकृत प्र. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ	२०१०.
	भारतीय ज्योतिष	शिवनाथ झारखंडीकृत प्र. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ	
५४	आर्यभटीय	चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी	१९७६.
५५	सूर्यसिद्धान्त	प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	२०००.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५६	अर्वाचीनं ज्योतिर्विज्ञान, रामनाथसहायकृत	सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी	१९९६.
५७	वेंकटेश्वरशताब्दीपंचांग,	खेमराज श्रीकृष्णदास	१९८७.
५८	श्रीविश्वनाथपंचांग	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी	२००७.
५९	गणेशआपापंचांग	बालकृष्णशास्त्री, राजेश्वरी पुस्तकालय, वाराणसी	२००७.
६०	श्री आदित्यपंचांग	ज्योतिर्वेदविज्ञान संस्थान, वाराणसी	२००७.
६१	ज्योतिर्गणितकौमुदी	गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुंबई	१९८८.
६२	लीलावती	भास्कराचार्यविरचित चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी	१९७९.

॥ इति ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लेखक परिचय

नाम : आचार्य भक्तिपुत्र रोहतम

पिता : स्व. श्री रघुराज सिंह

माता : श्रीमती तारादेवी

शैक्षणिक योग्यता :

-आगमाचार्य स्वर्णपदक सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

-वेदान्ताचार्य-सभी तीन स्वर्णपदक- संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-२२१००५

-विद्यावारिधि (पीएच.डी) जे.आर.एफ. नेट, सन् १९८६

सम्प्रति - आचार्य धर्मागम विभाग, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-२२१००५

दूरभाष - कार्यालयीय - ०५४२-६७०१९२९

मोबाइल - +९१९४५०५७५७६५, ७९८५४२८३०३

जन्मभूमि - ग्राम माँझगाँव, पत्रालय - पालपुर, जनपद-अयोध्या (फैजाबाद) २२४१५३ (उ. प्र.), भारत।

सहायक लेखक परिचय

नाम : एकात्मदेव

पिता : **आचार्य भक्तिपुत्र रोहतम**

शैक्षणिक योग्यता : एम.ए. संस्कृत वेदग्रुप, संस्कृत विभाग, कला संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-२२१००५

जे.आर.एफ. नेट यूजीसी.

अनुसंधानरत - संस्कृत विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जन्मभूमि - ग्राम माँझगाँव, पत्रालय - पालपुर, जनपद-अयोध्या (फैजाबाद) २२४१५३ (उ. प्र.), भारत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऋतुयें प्राकृतिक हैं। दिन-रात प्राकृतिक हैं। वैदिक ऋषि और वैज्ञानिक, अपौरुषेय प्रकृति के विज्ञानों के द्रष्टा हैं, कर्ता नहीं। इन प्राकृतिक सत्यों को जानकर ही हम प्रकृति के अनुरूप कृषि, आवास, आमोद-प्रमोद आदि की समुचित व्यवस्था कर सकते हैं, विपरीत नहीं। अपनी धुरी पर 23 अंश 28 कला झुकी घूमती, सूर्य की परिक्रमा करती, सूर्य से आतप और प्रकाश प्राप्त करती हुई, पृथ्वी ही दिन-रात, ऋतु-मास-वर्ष की रचना करती है। इसी प्रकार पृथ्वी की परिक्रमा करता, सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित, पृथ्वी की छाया के अनुरूप, रात्रि में घटता-बढ़ता दिखता, तदनु अपने प्रकाश से रात्रि को उल्लसित करता, अपनी कलाओं से रात्रि को दिखाता-गिनाता चन्द्रमा पृथ्वी के प्राणियों का जीवनदाता है। पहली गणना पृथ्वी की गति में चलती दिन-रात के क्रमिक घटने-बढ़ने में व्यवस्थित ऋतु, मास, वर्ष को दर्शाती आर्तव गणना है और दूसरी रात्रि में चन्द्रकलाओं को नक्षत्रों के साथ दर्शाती चान्द्र तिथियों की गणना है। ऋतुओं से दिन मास वर्ष को दर्शाती, आर्तव वार्षिक काल गणना के साथ ही, नाक्षत्र चान्द्रकला गणना का प्राकृतिक वैज्ञानिक स्वरूप भी, वैदिक ऋषियों के माध्यम से वेदों में उद्घाटित है। न तो चन्द्रमा से ऋतुएँ चलती हैं, और न ही क्रम भंग कर महीने 31 दिन या 28 दिन के होते हैं। वेदों में काल गणना का श्रेष्ठतम विज्ञान पढ़ें, समझें और जानें यहाँ।

ॐ विज्ञानमानन्दं ब्रह्म

भक्तिकुल

भक्तिकुल ग्रन्थमाला का तृतीय पुष्प

PILGRIMS
PILGRIMS PUBLISHING
◆ Varanasi ◆
www.pilgrimsonlineshop.com
www.pilgrimspublishing.in

वैदिक कालचक्र
₹ 150/-

ISBN 978-93-5076-153-3
9 789350 761533